जीवन विवेचन

भाग 7(क)

परम पूज्य दिव्य ज्योति
देवकी माता जी के प्रवचन

मानव सेवा संघ प्रकाशन
वृन्दावन (मथुरा)

जीवन विवेचन

भाग 7(क)

परम पूज्या दिव्य ज्योति
देवकी माताजी के प्रवचन

मानव सेवा संघ प्रकाशन
वृन्दावन (मथुरा)

• प्रकाशक :

मानव सेवा संघ
वृन्दावन (मथुरा)
पिन-281121

© सर्वाधिकारी प्रकाशक

• प्रथम संस्करण—2008

• 3000 प्रतियाँ

• मूल्य Rs 20

• मुद्रक :
पावन प्रिन्टर्स,
मेरठ

प्रार्थना

('प्रार्थना' आस्तिक प्राणी का जीवन है।)

मेरे नाथ!
आप अपनी,
सुधामयी,
सर्व समर्थ,
पतितपावनी,
अहैतुकी कृपा से,
दुःखी प्राणियों के हृदय में,
त्याग का बल,
एवं
सुखी प्राणियों के हृदय में,
सेवा का बल
प्रदान करें;
जिससे वे
सुख-दुःख के
बन्धन से
मुक्त हो,
आपके
पवित्र प्रेम का
आस्वादन कर,
कृतकृत्य हो जायें।

ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द !

प्रार्थना

मेरे नाथ,

आप अपनी सुधामयी, सर्व समर्थ, पतित पावनी, अहैतुकी कृपा से मानव मात्र को विवेक का आदर तथा बल का सदुपयोग करने की सामर्थ्य प्रदान करें एवं हे करुणा सागर ! अपनी अपार करुणा से शीघ्र ही राग-द्वेष का नाश करें। सभी का जीवन सेवा-त्याग-प्रेम से परिपूर्ण हो जाए।

ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द !

वस्तु खिंचती है धरती की ओर
मनुष्य खिंचता है अनन्त की ओर।

अनुक्रमणिका

क्रमांक		पृष्ठ संख्या
1.	प्रवचन 1	...7
2.	प्रवचन 2	...19
3.	प्रवचन 3	...31
4.	प्रवचन 4	...46
5.	प्रवचन 5	...52
6.	प्रवचन 6	...62
7.	प्रवचन 7	...74
8.	प्रवचन 8	...77
9.	प्रवचन 9	...97
10.	प्रवचन 10	...106

मेरा मुझमें कुछ नहीं,
जो कुछ है सो तोर !

श्री सद्गुरु देव के श्री चरणों में
सादर सविनय समर्पित

—विनीता देवकी

प्रवचन 1

प्रश्न—कहा जाता है, कि स्वामी जी ने अपने गुरुदेव से जब अपने धर्म-ग्रन्थ पढ़ने की प्रार्थना की तो गुरुदेव ने कहा कि स्थिर बुद्धि में अर्थात् ठहरी हुई बुद्धि में सब ज्ञान स्वतः पैदा हो जाता है। और देखते हैं स्वामी जी का दिव्य ज्ञान, जिसमें हम सभी स्नान कर रहे हैं। स्थिर बुद्धि का क्या अर्थ है और स्वामी जी ने स्थिर बुद्धि की स्थिति प्राप्त करने के लिए क्या साधना की थी?

उत्तर—बहुत अच्छी बात है। जहाँ आपने यह चर्चा पढ़ी होगी, वहीं इसका उपाय भी पढ़ा होगा। उसी जगह पर यह लिखा हुआ है कि उसकी पाठशाला है एकांत और पाठ है मौन। बुद्धि की स्थिरता में सब ज्ञान स्वतः ही अभिव्यक्त होते हैं। इसकी पाठशाला है एकांत और पाठ है मौन। और थोड़ा और विस्तार कर दूँ तो इन्द्रियों को विषय-विमुख करके, मन को निर्विकल्प कर देने से बुद्धि स्थिर हो जाती है। बुद्धि जो है वह समष्टि की शक्ति का एक अंश है, और भौतिक तत्त्वों पर ही यह काम करती है।

इतना तो आप लोग मानते ही हैं, सत्य से अभिन्न होने में अविनाशी से अविनाशी योग प्राप्त करने में और परमात्मा से एक होने में बुद्धि सहायक नहीं है। तो बुद्धि वहाँ नहीं जाती है, बुद्धि का फंक्शन बुद्धि का काम कहाँ तक है? जहाँ तक भौतिक तत्त्वों का मामला है। तो इन्द्रियाँ जब विषय-विमुख कर लेगें आप तो मन निर्विकल्प हो जाएगा। मन में अगर किसी प्रकार का संकल्प नहीं उठेगा तो बुद्धि की आवश्यकता नहीं रहेगी। जब मैं कुछ बोलना चाहती हूँ, भीतर से मेरे में बोलने का संकल्प है, तो स्वर-यन्त्र से काम लेती हूँ मैं और यह बजने लगता है। जैसा-जैसा स्वर निकालने का संकल्प हैं वैसा-वैसा बज रहा है। तो इस स्वर यन्त्र के

काम करने की आवश्यकता कब तक है? जब तक मुझमें बोलने का संकल्प है। ठीक है? अगर मैं बोलना न चाहूँ, किसी प्रकार की बात-चीत करना आदमी न पसंद करे छोड़ दे तो स्वर-यन्त्र शांत हो जाएँगे न। उनकी जरूरत नहीं रहेगी। ऐसे ही जब व्यक्ति इन्द्रियों को विषय-विमुख कर लेता है। और मन को निर्विकल्प कर लेता है, अब मुझे कुछ नहीं करना है अब मुझे कुछ नहीं चाहिए तो इन्द्रियों के विषय-विमुख करने से, मन को निर्विकल्प करने से बुद्धि का काम खत्म हो जाता है। अब उसको कुछ करने की जरूरत नहीं है, तो जो इन्टलेक्चुयल फंक्शन है, बुद्धि का, इन्टैलीजेन्स का जो काम है वह कब तक चलता है जब तक किसी प्रकार के संकल्प की उत्पत्ति होती रहे तो उसका काम है कि वह विवेचन करेगी कि सम्भव है कि नहीं, कि कैसे होगा, होगा कि नहीं होगा, करना चाहिए कि नहीं चाहिए। बहुत तरह की बातें उसमें फंक्शन क्रियाएँ होनी लगती है। तो ऐसा कर देने से बुद्धि सम हो जाती है। अब उसके लिए कोई काम नहीं रहा। तो जब बुद्धि सम हो जाती है तो उस बुद्धि की समता में जब बाहर के भौतिक तत्त्वों के प्रभाव से उसमें फँसी हुई बुद्धि नहीं है तो उस बुद्धि की समता में भीतर के ज्ञान का प्रकाश होता है, अभिव्यक्ति होती है और उसमें, जो सब सद्ग्रन्थों में जीवन का सत्य अभिव्यक्त किया गया है, वह स्वत: ही उसमें सब प्रकट हो जाता है।

एक भाई ने एक और प्रश्न दिया है और उसमें लिखा है कि स्वामी जी ने स्थिर बुद्धि प्राप्त करने के लिए क्या साधना की? इन्द्रियों को विषय-विमुख करना, मन को निर्विकल्प करना, एकांत में रहना और मौन रहना। पाठशाला है एकांत और पाठ है मौन। और साधना है विषयों से विमुख हो जाना और सब संकल्पों का त्याग कर देना। सब विषय-भोगों का त्याग कर दो तो इन्द्रियाँ विषय-विमुख हो जाएँगी, सब संकल्पों का त्याग कर दो, तो मन निर्विकल्प हो जाएगा। यह उसकी साधना है और

इसी साधना से उनकी बुद्धि स्थिर हो गयी। और बुद्धि की स्थिरता में उन्होंने सब वेद, उपनिषद सब पढ़ लिया और पढ़ने वालों को धड़ाधड़-धड़ाधड़ उत्तर देते रहे। तो बुद्धि के स्तर पर शास्त्रों का जो अर्थ समझा जाता है उसमें और ठहरी हुई बुद्धि में जो शास्त्रों का अर्थ प्रकाशित होता है, उसमें कितना अन्तर मालूम होता था सो हम लोगों ने देखा नहीं, सुना है। अध्ययन के आधार पर बोलने वालों की जुबान बन्द हो जाती थी।

एक भाई लिख रहे हैं शंका। जब हमें प्रभु से भी कुछ नहीं चाहिए, तो प्रार्थना क्यों? अच्छी बात है, उनके भीतर यह शंका उठी है। प्रार्थना उसको नहीं कहते हैं, जो कुछ चाह की पूर्ति के लिए किया जाए वह प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना का अर्थ है, जीवन की आवश्यकता अनुभव करना। मुझे सत्य चाहिए, मुझे अविनाशी जीवन चाहिए, मुझे नित्य योग चाहिए व मुझे प्रभु-प्रेम चाहिए। तो जो सत्य है, नित्य विद्यमान है उससे अभिन्न होने की आवश्यकता जो जगती है भीतर में, उसका नाम है प्रार्थना और वह अनिवार्य है।

वह प्रार्थना तभी आरम्भ होती है, जब भगवान से कुछ और नहीं माँगना है। धन चाहिए कि स्वास्थ्य चाहिए कि यश कीर्ति चाहिए, सन्तान चाहिए कि सुख-भोग चाहिए कि लम्बी जिन्दगी चाहिए ये सब जो लोग चाहते हैं इसके लिए भगवान से जो कुछ कहा जाता है, उसका नाम प्रार्थना नहीं है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए स्वामी जी महाराज ने प्रार्थना शब्द के दो अर्थ बता दिए। एक कहा वैधानिक प्रार्थना और एक कहा अवैधानिक प्रार्थना। अब महाराज जी का अपनी एक शब्दावली की रचना है। तो वैधानिक प्रार्थना उसको कहते हैं कि जो अवश्य पूरी होती है, जीवन की माँग पूरी होती है, सत्य की जिज्ञासा पूरी होती है, प्रेम की अभिलाषा पूरी होती है। इसकी जो आवश्यकता अनुभव करता है आदमी,

उसका नाम है वैधानिक प्रार्थना। और हे भगवान मुझे मुकदमा जिता देना, हे भगवान मुझे व्यापार में लाभ दे देना—इसका नाम स्वामी जी ने हम लोगों को समझाने के लिए कह दिया कि भाई यह अवैधानिक प्रार्थना है। यह पूरी हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती है और हो जाए एक बार फिर भी सब चुक सकता है।

प्रश्न—विधान के आधार पर विधायक की सत्ता और विधायक के नाते विधान की सत्ता मानना इसमें से हमारे लिए कौन अधिक हितकर है?

जो तुम्हें पसंद आए सो अधिक हितकर है। एक ईश्वर-विश्वासी विधायक की सत्ता को स्वीकार करता है तो विधान को मान लेता है कि यह परमेश्वर की आज्ञा है। क्या आज्ञा है? कि तुम अपनी रक्षा चाहते हो तो किसी को हानि मत पहुँचाना। विधायक को मान लिया तो विधान को मान लेता है और एक विचारक है खोज के आधार पर चलना चाहता है। तो वह देखता है कि संसार में इतना जबरदस्त विधान चल रहा है विधान को देखकर के विधायक को मान लेता है।

एक साइंटिस्ट का उदाहरण में आप लोगों को सुनाया करती हूँ। चार छः वर्ष पहले की बात है, बातचीत हुई थी मेरी एक साइंस लेक्चरर से, तो उन्होंने अपने मित्र की कथा सुनायी थी मुझको कि वे एस्ट्रोनामी में रिसर्च कर रहे थे। देखा उन्होंने कि शून्य आकाश में इतना ट्रेफिक है, दिन-रात ग्रह, नक्षत्र, तारे अपनी-अपनी धुरी पर अपनी-अपनी गति में चलते ही जाते हैं, चलते ही जाते हैं तो शून्य आकाश और उसमें इतने असंख्य यात्री और फिर भी कहीं एक्सीडेन्ट नहीं हो रहा है। कौन सँभाल रहा है? इनको कौन चला रहा है? ये किसके विधान पर चल रहे हैं, ये किसकी आज्ञा पर चल रहे हैं? ट्रेफिट-कन्ट्रोलर वह कोई दिखता ही नहीं है। तो उसने अपने रिसर्च के विषय को छोड़ दिया। एकांत में जाकर के बैठ

गया कहने लगा, कि अब ग्रह-नक्षत्रों की गति-विधि कौन नापता रहे, अब चलो उस कन्ट्रोलर से मिल लो तो सब समाचार मालूम हो जाएगा। यह अभी की बात है। उस भाई को मिल ही गए होंगे कन्ट्रोलर। जो इस प्रकार से इतना सब छोड़-छाड़ के बैठेगा उसे मिलने में क्या देर लगेगी। तो उसने क्या किया? उसने विधायक की सत्ता नहीं स्वीकार की थी, उसने विधान देखा कैसे-कैसे हो रहा है? कौन चला रहा है? कौन सँभाल रहा है? किसके संकेत पर इतने ग्रह-नक्षत्र, अबाध गति से असंख्य-असंख्य वर्षों तक, युगों तक चलते रहते हैं, चलते रहते हैं।

फ्रैक्शन ऑफ सेकन्ड, एक सैकिण्ड का एक सहस्त्रांश भी उनकी गति में धीमापन या तेजी नहीं आती है। लाख-लाख वर्ष बीत गए, चल रहे हैं तो चल ही रहे हैं अपनी ही धुरी पर चल रहे हैं फर्क हुआ ही नहीं कभी। तो ऐसा कन्ट्रोलर तो कोई होगा जरूर भले दिखाई नहीं देता है तो चलो अब उससे मिल लेते हैं। तो विधान देखकर के विधायक को मानना हो गया न? जी! अब प्रश्न कर्ता भाई पूछ रहे हैं कि मेरे लिए कौन-सा अधिक हितकर है। दोनों ही हितकर है। अहितकर तो इसमें से कोई है ही नहीं है। और आपको जो रुचे सो ग्रहण कर लीजिए। विधायक में सहज से विश्वास होता हो तो विधायक की सत्ता स्वीकार करके विधान मान लीजिए और विधायक को मानने की इच्छा न होती हो तो जीवन के विधान को देख-देख करके विधायक को स्वीकार कर लेना पीछे से।

प्रश्न—सेवा-प्रवृत्ति का अन्त सहज निवृत्ति में होना चाहिए, इस निवृत्ति का स्वरूप क्या है?

उत्तर—सेवा का अन्त त्याग में होना चाहिए, और करने का राग मिट जाना चाहिए इस बात की व्याख्या तो बहुत जोर से उस दिन हो गयी थी, काफी कर दिया था मैंने। सहज निवृत्ति का अर्थ यह होता है कि अपने आप से ही आपके भीतर बाहर की सब गतियाँ शान्त हो जाएँ। तो

जीव-विज्ञान, शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान, इन तीनों ही के आधार पर एक पाठ हम लोगों को पढ़ाया जाता था विश्वविद्यालय में कि गति कहाँ से आरम्भ हुई? तो कहाँ से आरम्भ हुई, उसकी पृष्ठ भूमि खोजने चलें तो वहाँ जो पढ़ा वह तो अधूरा ही था, स्वामी जी महाराज ने जो पढ़ाया वह पूरा था। स्वामी जी महाराज ने क्या पढ़ाया कि जीवन में करने का राग है, तो राग के कारण से अहम् में स्फूर्ति उत्पन्न होती है फिर अहंकृति आरम्भ हो जाती है, फिर संकल्पों के नये-नये रूप बन जाते हैं, फिर ज्ञानेन्द्रियाँ, कार्मेन्द्रियाँ सक्रिय हो जाती हैं। तो इसका खूब विस्तृत वैज्ञानिक अध्ययन भी किया मैंने और फिर दार्शनिक अध्ययन करने पर भी इस बात का पूरा पोषण भी हो गया और निवारण की साधना भी सामने आ गयी। तो प्रवृत्ति में हम लोग प्रवृत्त क्यों होते हैं, ऐसा अगर सोचिएगा तो स्थूल स्तर पर देखिए सूक्ष्म शरीर में संकल्पों का दर्शन होता है, होता है न? यहाँ जाना है, वहाँ जाना है, यह खाना है, यह करना है, ऐसा तो जब भीतर से संकल्प उठते हैं तो हम प्रवृत्तियों में प्रवृत्त हो जाते हैं। साधकजन क्या करते हैं, अशुद्ध संकल्प को और सुख-भोग-जनित संकल्पों का त्याग कर देते हैं।

नहीं-नहीं मैं साधक हूँ, इन संकल्पों का स्थान नहीं है मेरे जीवन में, तो वे संकल्प वहीं खत्म हो जाते हैं। और शुभ संकल्प जिनमें कि परिवार और समाज की सेवा बनती हो, ऐसी प्रवृत्ति में हाथ डालते हैं और हाथ डालने में भी उनको इस बात का पूरा ज्ञान रहता है कि यह कर्म करना है केवल करने के राग को मिटाने के लिए, इसके बदले में अपने को कुछ नहीं चाहिए। न मैटिरियल रिगार्ड चाहिए न वरबल रिगार्ड चाहिए। आदमी बहुत शानदार हो जाता है कि किए हुए के बदले में कुछ सामान लेना पसंद नहीं करता है। यह क्या बात है? मैंने पैसे के लिए किया था क्या? मैं मजदूर हूँ क्या? मैं गरीब हूँ क्या? इन्कार कर देता है, नहीं नहीं यह सब नहीं चाहिए। तो यह सब नहीं चाहिए तो उनको वरबल रिवार्ड चाहिए

कि पेपर में निकलना चाहिए कि इन सेवा-भावी सज्जन ने इतना-इतना सामाजिक कार्य किया और ये इतने महान है कि इसके बदले में जो कुछ देने के लिए पसंद किया गया, सो उन्होंने इन्कार किया। यह जो पेपर में निकल जाएगा यह क्या है? यह बरवल रिवार्ड है। मुँह जबानी पुरस्कार है शाब्दिक। तो सही प्रवृत्ति का अर्थ होता है कि उसके बदले में अपने को किसी प्रकार का कुछ नहीं चाहिए। ऐसा ज्ञान लेकर के जब प्रवृत्ति में हाथ डालता है आदमी, तो काम खत्म होने के बाद भीतर, से बाहर से सब तरफ से अपने आप शांति आ जाती है। सहज निवृत्ति का अर्थ क्या होता है? एक निवृत्ति का अर्थ तो यह है कि अभ्यास के बल पर इन्द्रियों को विषय-विमुख करो, मन की गति पर कन्ट्रोल करो, चित्त को स्थिर करो तो मन को रोकना, मन को बाधित करना, मन को सँभालना और चित्त को स्थिर करना। इनका एक अभ्यास होता है। एक तो अभ्यास-जन्य निवृत्ति है और एक है ज्ञान पूर्वक आपने हित कारी कार्य किया और उसके बदले में कुछ भी लेना पसंद नहीं किया।

तो कार्य के अन्त में सब प्रकार की क्रिया-शक्ति जो है वह उस अविनाशी शांति में अपने आप डूब जाती है, तो संसार की जो गतिशीलता आरम्भ होती है वह अखण्ड शांति में से आरम्भ होती है और जब उसका काम खत्म होता है तो वह जाकर के उसी शांति में विलीन हो जाती है। तो एक तो अपने पर जोर डाल करके गति को रोकना और एक सहज भाव से सब गति जाकर के उस शांति में विलीन हो जाए। सहज भाव से जब गति विलीन हो जाती है, शांति में जाकर के डूब जाती है, इसको सहज निवृत्ति कहते हैं।

सेवा का अन्त त्याग में तो सेवा का व्रत मनुष्य के जीवन में है, इसी उद्देश्य से कि उसमें त्याग का बल आ जाए। सुख का भोगी बन्धन में बँधता चला जाता है, पराधीन होता चला जाता है और सेवा का व्रत लेने वाला सेवक उत्तरोत्तर स्वाधीन होता चला जाता है। कैसे, कि सेवा करेगें

और उसके बदले में अपने लिए कुछ नहीं चाहेगें तो इस व्रत से उसके भीतर अलौकिक शक्ति उत्पन्न होती है, जिसके बल पर वह सब सांसारिक बन्धनों को तोड़ देता है। इसलिए सेवा का अन्त अगर त्याग में हो जाए तो समझना चाहिए कि मैंने ठीक सेवा की और सेवा के बदले में अगर अधिकार-लोलुपता जग जाए तो समझना चाहिए कि मैंने सेवा नहीं की मजदूरी की।

जब इनर सर्किल में घनिष्ठ साधकों के साथ बैठ करके बातचीत होने लगती है, तो मैं अपना दिल टटोलती हूँ। अपना चित्र उनके सामने रखती हूँ और उनको भी संकेत देती हूँ कि सोचते जाओ, छः महीने सेवा कार्य किया है कि दो वर्ष किया है कि पाँच वर्ष के लिए पद लेकर किया है कि एक साल के लिए कि बिना पद लिए इतने दिन सेवा की है तो सेवा के अन्त में भीतर से अपने आप में रोम-रोम में शांति छा नहीं जाती तो ऐसा समझो कि मेरी सेवा में कहीं कोई त्रुटि रह गयी। अथवा ऐसा न लगे कि देखो इस संस्था की मैंने इतनी सेवा की और इस संस्था वाले लोग हमारी इस सुविधा का ध्यान नहीं रखते तो वे तो ध्यान नहीं रखते तो वे अपने कर्तव्य से चूक रहे हैं। उनका तो मालिक भगवान ही है जाने दो उनको, लेकिन तुम्हें जो याद आ गया कि मैंने इस संस्था की इतनी सेवा की, उसके बदले में मुझे सुविधा नहीं मिल रही है। तो जो सुविधा नहीं दे रहा है तो उसकी त्रुटि तो उसके लिए छोड़ दो, अपने लिए देख लो कि मुझे याद आ गया कि तुम्हें सुविधा क्यों नहीं मिली तो सब किया कराया मिट्टी। सेवक को अपनी सुविधा की याद नहीं आती है, सेवक में त्याग का बल आ जाता है।

जो पहली पीढ़ी के अपने लोग थे जैसे राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद जी, प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री जी, तो इन लोगों को जहाँ बैठा दिया गया, आज वहाँ बैठ करके वैसे काम किया और कल वहाँ से उठा करके दूसरी

जगह बैठा दिया गया तो वहाँ बैठकर काम किया। तो ये लोग पद की शोभा बढ़ाते थे, पद के अधीन नहीं होते थे। ऐसे लोग हैं संसार में जो पद की पकड़ में नहीं आते हैं। पद पर बैठा दो, तो उस व्यक्तित्व से पद की शोभा बढ़ जाती है, लेकिन वे स्वयं उस पद में बँधते नहीं। जब मौका लगा तो छोड़ करके अलग खड़े हो जाते हैं तो सेवा का अन्त जो है त्याग में होता ही है, यह मानव जीवन का एक अनुभूत सत्य है। और स्वाधीन तो व्यक्ति होता ही है राग-निवृत्ति से, राग मिट जाएगा तो स्वाधीनता मिल जाएगी।

इस प्रश्न में भी वही बात है। स्वामी जी ने कहा है कि ठहरी हुई बुद्धि में श्रुति का ज्ञान अवतरित होता है। कृपया स्पष्ट करें। तो हो गया।

प्रश्न—हम अचाह होना चाहते है, उपाय बताइए?

उत्तर—तो उपाय का उपाय नहीं पूछा जाता है। अचाह होना शांति का उपाय है, अचाह होना मुक्ति का उपाय है, अचाह होना स्वाधीन जीवन में प्रवेश करने का उपाय है। तो उपाय का उपाय पूछते रहोगे तो बनेगा नहीं। यह उपाय है, इसको करना है। चाह छोड़ना है और आपको चाह छोड़ना आता है। जैसे मैं बताऊँ एक मोह की संतान है और एक मित्र की संतान है और आपने भले आदमी होकर के भलमनसाहत से दोनों को सँभालना शुरु किया। अपना लड़का बड़ा आदमी बन जाए, बड़ी पोस्ट पर पहुँच जाए, बड़ी अच्छी तरह से पढ़ना, लिखना कर ले और यह मेरे मित्र का लड़का भी ऐसा ही हो जाए बहुत अच्छी बात है तो यह आपकी चाह हुई इसमें आपने प्रयास आरम्भ किया। और दोनों ही लड़के पिछड़ रहे हैं, तो बड़े ही सहज भाव से आप मित्र के लड़के से अचाह हो जाएँगे, भाड़ में जाए नहीं होता है, तो मत पढ़। नहीं सीखता है तो मत सीख। छोड़ देंगे उस चाह को बड़े सहज से छोड़ देंगे और जो अपना लड़का है

यदि दस बार फेल होगा तो ग्यारहवीं बार इमतिहान दिलवाएँगे। अचाह होना आता है, कि नहीं जी आता है।

प्रश्न—ईश्वर को हम स्वीकार करते हैं, पर स्वीकृति दृढ़ नहीं हो पाती है।

उत्तर—बड़ा बढ़िया उपाय महाराज जी ने बताया। ईश्वर को स्वीकार करने में एक शर्त है, केवल ईश्वर को स्वीकार करो। स्वामी जी महाराज कहते कि वह इतना बड़ा है, इतना विशाल है, इतना व्यापक है कि वह और किसी के साथ तुम्हारे दिल में नहीं घुसेगा। वह अकेला ही घुसना पसंद करता है। इसलिए स्वीकृति दृढ़ क्यों नहीं होती? कि ईश्वर भी मेरा है, यह हाड़-मांस का शरीर भी मेरा है, यह ईंट-पत्थर का बना मकान भी मेरा है यह मेरा है, यह मेरा है। तो भाई सौ चीज मेरी है उनमें से एक ईश्वर भी मेरा है। $\frac{1}{100}$ ईश्वर का स्थान हुआ न? तो कैसे दृढ़ होगी स्वीकृति। वहाँ तो सैन्ट पर सैन्ट चाहिए 99% भी नहीं चलेगा, शत प्रतिशत चाहिए इसलिए स्वीकृति दृढ़ नहीं होती है। जिन भाई-बहनों को स्वीकृति दृढ़ करनी हो उनको भक्तों की सलाह माननी चाहिए। भक्तों ने क्या सलाह दी?

मीरा जी ने कह दिया; उपदेश नहीं देती थी, मेरी तरह लेक्चर नहीं देती थी मीरा जी लेकिन मीरा जी अपने मन का भाव प्रकट करती रहती थी। तो उन्होंने कहा—"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोऊ"। और प्रेम का मन्त्र स्वामी जी ने पढ़ाया तो कहा, कि कोई और नहीं है। मीरा ने कहा कि 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोई'। दूसरा कोई मेरा नहीं है यह मीरा जी ने कहा तो स्वामी जी महाराज कह रहे हैं कि ईश्वर-विश्वास को दृढ़ करना है तो यह कहो कि दूसरा कोई है नहीं, है ही नहीं दूसरा कोई और नहीं है। वह एक ही है जिससे मैंने नाता जोड़ लिया, जो मेरा हो गया और हम हैं और वह है। बस सब कुछ उसमें खो गया तो स्वीकृति दृढ़ हो जाएगी।

स्वामी जी महाराज को आस-पास हम लोग घेरे रहते थे, दो चार नयी उम्र के लोग भी, पुरानी उम्र के लोग भी। बातचीत हो रही है कोई जल पिला रहा है, कोई सिर सहला रहा है, कोई गपशप कर रहा है कोई अपना दु:ख सुना रहा है। तो बात करते रहते महाराज तरह-तरह से और बीच-बीच में हृदय से उद्‌गार कुछ-कुछ निकलता रहता था—प्यारे तुमने खूब किया वाह यार तुमने खूब किया, ऐसा किया वैसा किया। तो कभी-कभी मुझे लगता कि हम लोग, जो स्वामी जी महाराज की सेवा में लगे हुए हैं तो महाराज हम लोगों को शाबाशी दे रहे हैं। तो संतोष में, कुछ नम्रता में मैं यह कह देती, अरे महाराज हम लोगों से क्या बनता है आप काहे ऐसी बातें कहते रहते हैं। तो खूब हँस देते और कहते कि लाली मैं तुमको थोड़े कह रहा हूँ। तुम समझ रही हो कि मैं तुमको कह रहा हूँ, कोई और है ही नहीं। तो ईश्वर-विश्वास को स्वीकृति को दृढ़ करने का यह अचूक उपाय है—किसी और की सत्ता ही नहीं है। तो पहले मीरा जी की बात मान लो। क्योंकि बहुत सारे दिख रहे हैं अपने को, तो पहले उनकी बात मान लो मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई। दूसरों कोई मेरा है नहीं, केवल गिरधर गोपाल मेरे हैं। तो पहले ऐसा मान लो कि वहीं मेरे हैं। पीछे क्या होगा? कि सब उनमें समा जाएगा। तब अपने आप दिखने लगेगा वह ही है, वह ही है, कोई और है ही नहीं। यह प्रेम का मन्त्र है। स्वीकृति को दृढ़ करो, उसका उपाय है।

प्रश्न—कहा जाता है कि पूर्व जन्म में मनुष्य अच्छे कर्म करने से मानव बनता है तो फिर वह मानव बनने के बाद गलत काम क्यों करता है?

उत्तर—तो पूर्व जन्म में मनुष्य। मनुष्य और मानव इन दोनों में आप ने भेद कर दिया। मानव को ही मनुष्य कहिए, मनुष्य और मानव में भेद मत कीजिए। और मानव-सेवा संघ के सिद्धान्त में तो ऐसा माना गया कि मानव-जीवन जो मिलता है किसी को, तो वह कर्म का फल नहीं है। क्योंकि

शुभ कर्म करने का प्रश्न तो उठेगा, मानव बनने के बाद। गाय, बैल, घोड़ा, बकरी के जीवन में शुभ-अशुभ कर्म का प्रश्न नहीं है। वे तो प्रकृति के नियम में बँधे हुए भोग योनियाँ है। शुभ कर्म करने का प्रश्न उठेगा कब जब विवेक का प्रकाश देकर आपको दुनिया में भेजा जाएगा तब। तो पहले मनुष्य बनता है, पीछे शुभ कर्म करता है, इसलिए मानव जीवन जो है, वह शुभ कर्म का परिणाम नहीं है। मानव जीवन जो है, वह जीवन-दाता का कृपा-प्रसाद है।

अब जीवन मिलने के बाद आदमी को शुभ कर्म ही करने चाहिए अशुभ कर्म नहीं करने चाहिए। तो आप कहते हैं कि क्यों करता है? तो दूसरों के बारे में तो हम जान ही नहीं सकते हैं। अपने से पूछ लो कि मैं गलत काम क्यों करता हूँ? ठीक है न? किससे-किससे पूछें कि तुमने गलती क्यों की? तुमने गलती क्यों की? और दूसरों से पूछने में फायदा ही क्या होगा? अपने ही से पूछ लो कि मैंने गलती क्यों की? और सचमुच अगर आप पूछेगें तो आपको उत्तर भी मिल जाएगा और गलती मिटाने का बल भी मिल जाएगा। उत्तर क्या मिलेगा? विवेक का अनादर किया इसलिए गलती की। और बल क्या मिलेगा? अब से अनादर नहीं करूँगा, गलती खत्म हो जाएगी।

प्रश्न—कहा जाता है कि मनुष्य ईश्वर का अंश है किन्तु वह माया से प्रेरित होकर कार्य करता है। क्या माया ईश्वर से भी प्रबल है?

उत्तर—ऐसा मालूम होता है। अब मैं साइक्लोजिस्ट हूँ न? तो साइक्लोजिकल उत्तर आ रहा है दिमाग में। ऐसा मालूम होता है कि हम लोग अपनी गलती का दायित्व चाहे ईश्वर पर चाहे माया पर देना चाहते हैं, सो मानव सेवा संघ नहीं करने देगा।

●

प्रवचन 2

अब एक बहुत अच्छी मुझे याद आ गयी, वह मैं आपको सुनाऊँ। समाज की बड़ी भयंकर दशा है। एक-एक अंग जो है वह विकृत हो गया है, सामान्य जन समाज इस पीड़ा से बहुत पीड़ित है। मुझे व्यक्तिगत रूप से बहुत से नवयुवकों से परिचय है, जो बड़े होनहार विद्यार्थी थे और एडमिन्ट्रेटिव सर्विस में हैं जगह-जगह पर, तो उनसे अभी भी बातचीत होती रहती है, और वे कहते हैं कि जहाँ भी रहो अगर ईमानदारी और सच्चाई से राष्ट्र की सम्पत्ति की रक्षा करते हुए, प्रजा की सेवा करना पसंद करो, तो बहुत तकलीफ हो रही है। ये वे लड़के कह रहे हैं।

शरीर के सम्बन्ध से छः भाइयों के बीच में अठारह भतीजे हैं, बहुत इन्डियन गवर्मेन्ट में भी हैं एडमिन्स्ट्रेटिव सर्विस में भी है और दूसरी-दूसरी जगह पर भी है और शिक्षा-विभाग में भी है, तरह-तरह के स्थान पर हैं। और भी बहुत से हैं बड़ा भारी लम्बा चौड़ा परिवार, बहुत सी रिश्तेदारियाँ। लड़के एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस में आते तो प्रायः मैं राँची में ही थी और उनकी एक-एक गोष्ठी रविवार को हुआ करती थी। उन लोगों की बात में बता रही हूँ। कई लड़के ऐसे हैं जो हाईब्लड प्रेशर और डाइबिटीज के रोगी हो गए। युवावस्था में चालीस वर्ष के आस-पास हैं अभी कम उम्र के ही हैं। क्या हो गया तो कहते हैं, बुआ करें क्या? ऊपर से दबाब और नीचे से घिराव ब्लडप्रेशर कैसे ठीक रहे। थोड़े में, वह कथा मुझको ज्यादा नहीं कहनी है, अब मैं बता रही हूँ कि अंग-अंग ऐसा विकृत हो गया है कि सही आदमी, ईमानदार आदमी कुशल से रह नहीं सकता है।

बड़ी परेशानी है तरह-तरह की। खास करके अब कौन विभाग का नाम लिया जाए शिक्षा में भी वैसे ही है और शासन में भी वैसे ही है। और जगह-जगह पर अब सेना में भी वैसे ही प्रवेश कर रहा है। तो क्या

होता है कि मानव-सेवा-संघ का कार्यक्रम जब होता है, सामाजिक लोग जब आते हैं, तो मुझे कहते हैं कि आपने व्यक्तिगत रूप से शान्ति, मुक्ति, भक्ति की बात बहुत अच्छी तरह सामने रख दिया और हम भी इस सत्य को स्वीकार करते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है लेकिन हम सब लोग तो बड़े जोर से उलझे हुए हैं, क्योंकि बृहत् समाज के साथ व्यक्तिगत जीवन इस प्रकार से जुट गया है कि समाज में आने वाली आपत्ति-विपत्ति के बीच में हम लोग मेन्टल बैलेन्स को रखें कैसें और अपने नैतिक स्तर को सँभालें कैसें ? अच्छी बात है भाई मैं सोचने लग जाती हूँ, मैं चुप हो जाती हूँ ऐसा लगता है कि इस प्रश्न का मैं क्या उत्तर दूँ? मानव सेवा संघ ने उत्तर तो दिया, क्या कहा, भाई—समाज कोई हवा में तो बनता नहीं है।

व्यक्तियों का समूह समाज है। एक-एक व्यक्ति अगर एक-एक जगह पर सही हो जाए तो उस एक व्यक्ति से वहाँ का वायुमण्डल सही हो सकता है। और एक-एक व्यक्ति अपने कर्तव्य में दृढ़ हो जाए तो कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों का समूह जो बनेगा, तो बहुत सुन्दर समाज बन सकता है। तो उपाय तो यही है, दूसरा उपाय नहीं है। लेकिन फिर कोई-कोई साधु संत मण्डली के मिल जाते हैं तो हमको डरा देते हैं, कह देते हैं। एक सज्जन मिले थे, हमारे साथ के कार्यकर्ता को कहने लगे कि मैं अपने गुरु महाराज के पास गया तो उन्होंने पूछा कि अरे राधानाथ तू मानव सेवा संघ में क्या करता है ? तो उन्होंने कहा कि महाराज अपना कल्याण और सुन्दर समाज का निर्माण करता हूँ। और क्या बताएँ? सही बात जो थी वह उन्होंने कह दिया, तो उनके गुरु महाराज ने कहा कि अरे भैया, तू कलियुग मिटा देगा, कलियुग के स्वभाव को मिटा देगा, कलियुग के प्रभाव को मिटा देगा ? चला है सुन्दर समाज का निर्माण करने।

बेचारे सुन करके चुप रह गए। अब गुरु महाराज को क्या उत्तर दें ? मेरे पास आकर कहने लगे—बहन जी, अब क्या करें ? अब बहन

जी भी चुप, अब क्या करें ? मन ही मन इस बात का मुझे दु:ख हो गया। मैंने कहा कि ये बात कह रहे हैं अब हमारे पास इसका उत्तर क्या है ? उत्तर तो आदमी जीवन से दे, कथन के उत्तर का तो कोई फल नहीं होता। तो सहायता तो मुझे बहुत मिली है, बहुत सहायता मिली है। कल प्रात: काल की बैठक में आपने सुना कि बूढ़े लोगों को पेंशन दिलवाने के लिए हरिराम जी गाँव से फार्म भरवा कर, सही करवा कर ले आते हैं। तो मानव सेवा संघ के आजीवन कार्य कर्ता के चरित्र की धाक ऐसी जम गयी है कि अगर हरिराम का वह रिकमेण्ड किया हुआ है, तो मजिस्ट्रेट उस पर दोहरा कर सोचता नहीं है, कि सत्य हैं कि मिथ्या है। तो ऐसा तो आप नहीं कह सकते हैं कि कलियुग में नैतिक ऊँचाई का कोई प्रभाव नहीं है। ऐसा नहीं कहा जा सकता प्रभाव तो है, लेकिन सोचने की बात है यह। प्रभाव कोई व्याख्यान से तो नहीं जम सकता है।

यह प्रभाव ऊँचे चरित्र से जम सकता है। ठीक है न। तो बहु संख्या मेरी दृष्टि में, अब हमारी दृष्टि कौन-सी पूर्ण है कि हम उसकी गलती न जानें। फिर भी ऐसे ही सोचो कि मेरी दृष्टि में अब बहुसंख्या गलत दिखाई दे रही है तो बुराई की वृद्धि में अगर कोई रोक नहीं डालता है, तो हम भलाई की वृद्धि में रोक डाल करके निराश क्यों हो जाएँ ? जी ! निराश तो नहीं हो सकते। तो एक-एक भाई को एक-एक बहन को इस ढंग से अपने को अच्छाई की ओर चलाना चाहिए। स्वामी जी महाराज ने लिखा भी है और बताया भी है कि अगर बिना प्रचार किये बुराई का प्रचार हो जाता है, तो बिना प्रचार किये भलाई का प्रचार नहीं हो जाएगा ? जी ! हो जाएगा। इतना बड़ा समूह इस बीच में अगर एक व्यक्ति वीतराग बैठा है, एक व्यक्ति शुद्ध हृदय का बैठा है, एक व्यक्ति जन-समाज का हितकारी बैठा है, तो उसके भीतर से जो संकल्प और चिन्तन उठ रहे हैं, वे क्या दूसरों में अच्छे चिन्तन को उद्‌भूत नहीं करेगें ? करेंगे

तो बुराई का प्रचार हो जाता है बिना व्याख्यान दिए, तो भलाई का प्रचार क्यों नहीं हो जाएगा ? हो जाएगा जरूर। जीवन के माध्यम से करना पड़ेगा, कथन से नहीं होगा। इस तरह की बातचीत हम लोग करते रहें, काम अपना करते रहें। तो सुनने को मिला, मुझे बड़ा अच्छा लगा। पिछली दफा दिवाली के सत्संग के बाद भागवत् कथा हो रही थी यहाँ तो उस भागवत् कथा में यह सुनने को मिला कि कलियुग का जो पूरा पीरियड है, सतयुग, द्वापर, त्रेता से तो जरुर छोटा है लेकिन हम लोगों के जीवन की जो अवधि है, उसकी नाप तौल से तो कलियुग का पीरियड बहुत लम्बा है, तो उसमें यह लिखा है कि इतना जो लम्बा पीरियड है कलियुग का (इतनी लम्बी अवधि है तो सारा समय जन समाज में घोर अंधकार, पाप और दुःख नहीं रहता है, बीच-बीच में थोड़े-थोड़े समय पर। थोड़े-थोड़े समय पर सतयुग का प्रभाव भी उसमें आता रहता है।

पंडित जी सुना रहे थे, मैं सुन रही थी। भीतर मुझ को बड़ा अच्छा लगा। हमने कहा कि अब हम नहीं कह सकते हैं कि जो सत्य के प्रभाव के लिए इतनी संस्थाएँ, इतने संत महात्मा, इतने जन समाज के लोग प्रयास कर रहे हैं वह सबका सब निरर्थक जाएगा, ऐसी बात नहीं है ? ठीक है न, तो मुझको बड़ा आश्वासन मिला। हमने कहा कि अब तो हम और उत्साह से प्रयास करेगें क्योंकि सारा कलियुग घोर अंधकार में पड़ा रहेगा, ऐसी बात नहीं है। बीच-बीच में सत्य का प्रकाश होता रहेगा, अच्छी वृत्तियों वाले लोग आते रहेंगे और समाज के दुःख को घटाते रहेंगे और मनुष्य का समाज जो है वह अच्छे रास्ते पर चलता रहेगा। चूँकि मैं उस ग्रन्थ के वाक्य में विश्वास करती हूँ इसलिए मेरे दिल में कुछ सहारा मिल गया। हमने कहा कि अच्छी बात है तो अब हम इस ढंग से कार्य करेंगे, हम यह मान कर चलेगें कि कलियुग के प्रभाव से सब के सब डूब जाए ऐसा न सोचें। और रामचरित मानस में भी लिखा है, गोस्वामी जी ने भी लिखा है। चौपाई स्पष्ट नहीं कि जरूर कलियुग का प्रभाव हम लोग मानते

हैं, लेकिन सबको वह प्रभावित नहीं करता, जो सचेत लोग है, जो भगवत्-भक्त लोग है, हरिआश्रित जो लोग हैं, विवेकी जन जो है उन पर प्रभाव नहीं पड़ता। यहाँ भी प्रमाण है कि आदमी चाहे तो ऊँचा उठ सकता है और इससे, समाज को ऊँचा उठाने में भी सहायता मिल सकती है।

ऐसी-ऐसी थोड़ी-थोड़ी आशा मेरे भीतर थी, और उत्साह पूर्वक हम लोग अपना काम करते जा रहे हैं। तो एक संत के पास मैं पहुँच गयी। उन संत के जीवन की जो बातें हैं, उससे ऐसा प्रकट होता है कि वे सशरीर इस धरती पर हैं जरूर लेकिन उनको अपने निज स्वरूप का, निज लोक का, निज प्रेमास्पद का अनुभव हर समय रहता है। पास में रहने वालों ने देखा है, मैंने भी रहकर देखा है, उनके साथ मैं ठहरी हुई थी, बातचीत हो रही थी, तो उन्होंने मुझे बहुत बढ़िया बात बताई अभी याद आ गयी, मैं आप लोगों को सुनाऊँ बहुत आनन्द आएगा।

वे ध्यान में बैठी थी। स्त्री शरीर है, ध्यान में बैठी थी। उसके बाद उन्होंने कहा कि अब एकान्त कमरा है, जहाँ पर जब उनकी इच्छा होती है एकान्त में रहती हैं। तो कहने लगी कि हम एकांत में बैठे थे ध्यान में, तो मुझे ऐसा लगा कि एक पूरी प्रकाश से भरी हुई एक अदभुत् जगह पर मैं पहुँच गयी हूँ। वहाँ प्रकाश ही प्रकाश है और कुछ है ही नहीं। वहाँ पहुँच करके मुझे आश्चर्य हुआ कि कैसे में यहाँ आ गयी फिर कोई बात नहीं, देखा उन्होंने कि वहाँ नौ ऋषि बैठे थे, सबको तो उन्होंने नहीं पहचाना। बता रही थीं एक तो मुझे मालूम हुआ वशिष्ठ जी हैं और दूसरे स्वामी शरणानन्द जी महाराज है और तीसरे उनके गुरु स्वामी कार्तिकेय जी महाराज हैं। तो नौ में से तीन को उन्होंने पहचाना। बाकी को नहीं पहचाना, तो हँस कर कहने लगीं कि धरती पर तो मैंने यह सुना था कि सप्तऋषियों के मण्डल में सात ऋषि हैं, आप लोग तो नौ जने बैठे हैं यहाँ। तो उनके गुरु ने कहा कि हे किशोरी जी, आप ही ने तो हम दोनों को इसमें शामिल

होने के लिए भेज दिया है। अपने को और स्वामी शरणानन्द जी महाराज को आप ही ने तो इसमें शामिल कर दिया है। बच्चे की तरह उनके साथ खेलते थे, विनोद की बातें होती रहती थीं और कुछ उसमें सत्यता भी है। तो उनके गुरु ने ऐसे कह दिया तो ये हँस के रह गयी। फिर वे लोग बड़े गम्भीर हो गए, ऐसा जैसे कि कोई बहुत चिन्ता-जनक समस्या पर बातचीत हो रही हो। ऐसे वे नौ के नौ बिल्कुल गम्भीर हो गए। ये देख रही थीं, देखकर के पूछा उन्होंने कि क्या बात हो रही है? क्या हो रहा है? तो उनके गुरु ने और स्वामीजी महाराज ने उत्तर दिया और किसी ने बातचीत नहीं की।

उन्होंने कहा कि संसार की हालत इतनी खराब हो गयी है, इतने लोग सब बड़े दुःख में पड़ गए हैं, तो हम लोग सोच रहे हैं कि अब कैसे इन दुःखी जनों को सँभाला जाए। तो किशोरी जी ने अपने महाराज जी से और हमारे महाराज जी से कहा, दोनों से कहा कि महाराज जी आप लोगों को संसार के दुःखी लोगों पर इतनी दया आ रही है, इतनी चिंता हो रही है, तो आप दोनों चलिए, हमारे साथ धरती पर चलके सँभाला जाए, तो स्वामी शरणानन्द जी महाराज ने कहा कि किशोरी जी, आपको तो मालूम है, हम धरती पर नहीं जाते, हम नहीं जाएँगें तो किशोरी जी चुप हो गयीं। इन्कार कर दिया बता रही थी कि बड़े जोर से दृढ़ता के साथ इन्कार किया, नहीं-नहीं हम नहीं जाएँगे। आप को तो मालूम है हम नहीं जाते हैं तो चुप हो गयीं।

फिर उसके बाद कहा उन्होंने कि बड़ा-बड़ा सा मोटा-मोटा सा एकदम सफेद रजिस्टर खूब लिख-लिख कर थान लगा कर रखा है उन ऋषियों के पास में। देखा उन्होंने देखने लगी ध्यान से तो उन्होंने कहा कि किशोरी जी यह सब विधान बन रहा है, संसार को सँभालने के लिए। ऐसा बोलने-बोलने में भी जो उनकी बातें याद आ रही है, तो एकदम से

बदन सिहर रहा है, अच्छा लग रहा है सोच-सोच के। किशोरी जी यह विधान बन रहा है, संसार को सँभालने के लिए। और उसके बाद इन्होंने पूछा कि कौन-सा स्थान है, मैं कैसे आ गयी यहाँ तो उन्होंने कहा, स्वामी जी ने कहा कि यह सत्य लोक है। केवल प्रकाश और ऋषि और कुछ नहीं था। यह सत्य लोक है। कह करके वे बोलीं कि सब ऋषि एक स्वर से कहने लगे कि महात्मा और परमात्मा का सिद्धान्त संसार में चलेगा, महात्मा और परमात्मा का सिद्धान्त संसार में चलेगा। अब यह विधान चलेगा, महात्मा और परमात्मा का विधान संसार में चलेगा।

किशोरी जी को कहा उन्होंने। कहते-कहते फिर इनकी स्थिति बदल गयी तो उन्होंने अपने कमरे में अपनी इसी जगह पर बैठे हुए अपने को पाया, तो सोचने लगी कि मैं कैसे वहाँ चली गयी थी और कैसे वहाँ से यहाँ आ गयी। सो तो हमको पता नहीं चला लेकिन काफी देर तक उस कमरे में बैठे हुए यही ध्वनि उनके कान में गूँजती रही महात्मा और परमात्मा का विधान संसार में चलेगा। कितनी देर तक उनको यह ध्वनि सुनाई देती रही और कितनी देर तक उस देखे हुए दृश्य की स्मृति बनी रही और बैठे-बैठे सुनती रही बहुत देर तक। तो यह घटना उन्होंने अपने अनुभव की सुनाई। कुछ लोग ऐसे हो सकते हैं कि जिनके दिल में शंका हो कि क्या जाने स्वप्न होगा, तो क्या जाने कल्पना होगी तो भई जिनकी शंका हो उनको तो मैं नहीं जानती हूँ।

शंका वाले शंका की बात जानें लेकिन मैं महाराज जी में विश्वास करती हूँ। मैं ऋषियों के लोक-हितकारी चिंतन में विश्वास करती हूँ। मैं परमात्मा की शक्ति में विश्वास करती हूँ। और मैं किशोरी जी की वाणी में विश्वास करती हूँ वह मुझे तो बहुत ही अच्छा लगा, बहुत अच्छा लगा, जैसे कि एकदम हारे हुए सिपाही को किसी अदृश्य शक्ति से बहुत बल मिल जाए, इस प्रकार से मुझे बल मिल गया। उसी समय मेरे ध्यान में

आया कि मैं सत्संगी भाई-बहनों को सुनाऊँगी कि भाई कलियुग का नाम लेकर के अपनी भूल को औचित्य मत देना कभी । यह भी तो होता है न? कलियुग का नाम लेकर के अपने मन की बुरी वृत्तियों को समर्थन मत देना औचित्य मत देना और सुधार से और उत्थान से निराश कभी मत होना। ठीक है, स्वीकार है? बहुत धन्यवाद।

अब आगे सुनों जब नया-नया नशा था साधक होने का, साधन होने का। तो तरह-तरह के प्रश्न स्वामी जी महाराज के सामने रखती थी। तो जब मुझ में क्रिया का वेग था, खूब वेग था। जिस समय मुझको यह विश्वास था कि शारीरिक, बौद्धिक बल के पुरुषार्थ से आदमी का जीवन पूर्ण हो जाता है। उस समय में खूब क्रिया के वेग में लगी रहती थी और अपने को समझाती रहती थी। भीतर और बाहर का संघर्ष—भीतर तो अपने विकारों के साथ लड़ना, भीतर-भीतर, उठने वाले विकारों से संघर्ष करना। नहीं मैं ऐसा नहीं करूँगी नहीं मैं ऐसा नहीं होने दूँगी, नहीं मैं इस संकल्प की पूर्ति नहीं करूँगी। भीतर से उठ रहा है और ऊपर से जोर डाल करके दबा रही हूँ। तो एक तो भीतर का संघर्ष और एक बाहर प्रतिकूल परिस्थितियाँ का संघर्ष तो इतने संघर्ष में पड़ करके भी कभी हार मानने की बात जीवन में आयी नहीं। बड़े जोर से कमर कसके। जैसे कि सारे संघर्षों का सामना करने के लिए ही जीवन मिला हो। तो "जीवन है संग्राम बन्दे जीवन है संग्राम, ले हिम्मत से काम बंदे, जीवन है संग्राम।"

यह गाती रहती थी और संघर्ष में पड़ी रहती थी। स्वामी जी महाराज के पास आने के बाद सब शांत करके बहुत धीरज से, भीतर के सब संकल्पों को छोड़ करके उनकी वाणी सुनने की जरूरत पड़ती। सँभालते-सँभालते काफी समय लगा जबकि भीतर बाहर की क्रिया के वेग को मैं थोड़े-थोड़े समय के लिए अपने नियन्त्रण में ला सकूँ। महाराज जी

तो एकदम पारखी, उनकी दृष्टि तो इतनी पैनी थी तो कि दूर से कोई साधक उनके पास आ रहा है तो क्या पूछने आ रहा है, सो स्वामी जी को मालूम हो जाता था। और कैसा भी प्रश्न करे, कितना भी सभ्य, शिष्ट शब्दों में छिपा कर करे, महाराज जी उसकी मंशा को एकदम समझ जाते थे। मेरे को देखकर ही उन्होंने तो जान ही लिया कि इन्हें कैसे सँभालना होगा। जब मुझे सेवा के लिए प्रेरित करने लगे, कार्य के लिए प्रेरित करने लगे तो मैं बहुत प्रकार के प्रश्न करूँ उनसे। स्वामी जी महाराज, आप कैसी बात करते हैं। आप तो कहते हैं, जीवन मिलता है अप्रयत्न होने से, कुछ नहीं करने से, तो इतने प्रकार की सेवा प्रवृत्तियों में क्यों डाल रहे हैं मुझें? कैसे सँभालू मैं? ऐसे-ऐसे में तरह-तरह के प्रश्न करती।

तो बहुत बढ़िया उत्तर स्वामी जी ने दिया। स्वामी जी महाराज ने कहा, कि लाली देखो, अचल हिमाचल होकर के सेवा करो और चाहे लहराती हुई गंगा होकर सेवा करो लाली, तुमको सेवा करनी पड़ेगी। तुम्हें पीड़ितों की पीड़ा में भाग लेना पड़ेगा तो एक दिन हँस करके मैने कह दिया कि महाराज कितनी मुसीबत उठा करके, भीतर-बाहर कितना संघर्ष करके, आपके पास बैठ करके किसी तरह मैंने व्यक्तिगत दुःख का भार उतारा। अब बाज आये साधु-संत होने से। दुनिया भर के दुःख का भार कौन लेता फिरे? रहने दो। तो फिर उन्होंने उत्तर दिया कि तुम रह पाओगी? रह नहीं सकती। आज मैं कहता हूँ कि करो, तो अगर मेरे कहने से करोगी तो संकल्प में बँधोगी नहीं।

गुरु हो तो ऐसा। मेरे कहने से करोगी तो संकल्प में बँधोगी नहीं। और फिर अपने संकल्प से करोगी तो उस पहाड़ को पार करने में भी स्ट्रेन होगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि करो। अच्छी वात महाराज ठीक है। क्रिया का वेग तो भीतर था ही। वह तो जबरदस्ती निवृत्ति वाला बनाना चाहती थी मैं, तो महाराज जी ने नहीं बनने दिया, अच्छी बात है। फिर

अचल हिमाचल होकर सेवा करो इसका क्या अर्थ है? तब स्वामी जी महाराज ने मुझे बताया—देवकी जी, जब राग की निवृत्ति हो जाती है जब संत जन में सहज निवृत्ति आ जाती है, जब उनके अहम् की सीमा टूट जाती है, वे सब प्रकार से सत्य से अभिन्न होकर सदा-सदा के लिए शांत हो जाते हैं। तब उनसे आगे करणीय जैसा कोई कर्म शेष रहता नहीं है। तब उनको सेवा करना है, ऐसा संकल्प उठता नहीं है। तब वे सचमुच अपने अहंकृति से, अहम् स्फूर्ति से प्रेरित नहीं होते हैं। तब तो वे अचल हिमाचल की तरह शांत रहते हैं। और उनके जीवन का सत्य, उनके जीवन की शक्ति, उनके जीवन की करुणा, उनके जीवन का ईश्वरीय प्रेम स्वत: ही बिना किये जन समाज की सेवा करता रहता है। कितनी बड़ी बात है, तो मुझे याद आ गया।

किशोरी जी ने जब ऋषियों की बात बतायी, तो मेरे ध्यान में आ गया। त्रिगुणातीत पुरुष, सत्य लोक के वासी धरती पर आएँगे नहीं, स्वामी जी ने इंकार कर दिया कहा, पार हो गए अब काँहे को आएगे यहाँ, आएँगे नहीं यहाँ। लेकिन जहाँ हैं वहीं से हमारे आपके कल्याण का काम कर रहे हैं। उनके हृदय की पीड़ा कौन बात की पीड़ा? हाय! मनुष्य होकर के इतने दु:ख में पड़ा रहे? मनुष्य होकर हाड़मांस के शरीर की दासता में बँधा रहे? मनुष्य होकर जीवन और मृत्यु के संघर्ष में पड़ा रहे? जिसने अपना दु:ख मिटाया वह दूसरे का दु:ख देख नहीं सकता। रहा नहीं जाता तो उनके हृदय की करुणा, उन ऋषिमण्डल के हृदय की करुणा हम लोगों को सँभाल रही है, अगर यह आस्था हम लोगों के भाई बहनों के जीवन में बैठ जाए तो कितना बड़ा बल मिलेगा आगे बढ़ने के लिए।

बहुत बड़ी बात होगी। तो अचल हिमाचल होकर सेवा करो। करो नहीं, करो नहीं वह सदा होती रहेगी। और ऐसी सेवा की भावना जिस

महापुरुष में थी, वे क्या करते थे? वे कहा करते थे, हे मेरे प्यारे! कभी कभी अपने भीतर-भीतर सोचते-सोचते उनके मुख से वचन निकल भी जाते थे। भगवान से बातें होती रहती थी सो हम लोग सुन लेते थे। एक दिन बात कर रहे थे तो कह रहे थे। हे प्यारे, इस जीवन से जो सेवा लेनी है ले लो पर मेरे प्यारे, मुझ पर इतनी कृपा करना कि मुझे इस बात का भास न हो कि इसके द्वारा सेवा हो रही है।

अचल हिमाचल बनकर सेवा करने का क्या अर्थ है? कि जीवन का सत्य अभिव्यक्त होकर जन-समाज की पीड़ा से, द्रवित हृदय से करुणा का रस बरसता रहे, पीड़ित जन-समाज की सेवा बनती रहे, सेवा करने वाले को करनी न पड़े। तो अचल हिमाचल होकर सेवा करो का क्या अर्थ है? कि तुम अपने जीवन को सत्य से अभिन्न कर लो, तो उस संत जीवनी से सेवा बनती रहेगी अपने आप स्वत:, या फिर गंगा की तरह लहराओ। तो हमारे तो लहराने के दिन थे न दौड़ करके, भाग करके, क्लास लेते-लेते आज 2 बजकर 10 मिनट पर घण्टी बजेगी तो कॉलेज में छुट्टी हो जाएगी तो मुझे स्वामी जी के पास जाना है, 2 बज करके 5 मिनट पर गाड़ी तैयार होकर के सामान सहित कॉलेज के फाटक पर खड़ी हो जाएगी।

लड़कियाँ जो हमारे पास रहती थीं साध्वी, सावित्री। ये लोग मुझे सँभालती थी। तैयार करके फाटक पर गाड़ी खड़ी है। घण्टी लगी क्लास में से निकली और कार में बैठे, स्टेशन गए, ट्रेन में बैठे और स्वामी जी के पास पहुँचे और वापस जा रहे हैं तो मेरा टाइम टेबिल ले लेते। मेरा होली डेज लिस्ट ले लेते, साल में कहाँ-कहाँ कब छुट्टी होने वाली है, किस दिन कॉलेज खुल रहा है, किस पीरियड में पढ़ाना है, तुमको कब उपस्थित होना है। महाराज आज ओपनिंग डे है, तो आज मुझको 12 बजे से पहले

पहुँचना है। अच्छी बात क्लास कब शुरू होने वाला है। महाराज 10 बजकर 55 मिनट पर क्लास शुरू होगा। अच्छा ठीक है रास्ते में नहला देंगे, रास्ते में जल-पान करा देगें।

कार में बैठा करके 10 बज करके 50 मिनट पर कॉलेज पर खड़ी हो जाएगी गाड़ी, लाली, अब जाओ पढ़ाओ। ट्रेन से उतरी और क्लास लेने गयी। तो इस प्रकार का बीता है प्रत्येक वर्ष। तो यह गंगा की तरह लहराने वाली बात थी। हमने कहा इसका क्या अर्थ है महाराज? तब उन्होंने बताया कि जब तक क्रिया का वेग है भीतर, तब तक मनुष्य को इस प्रकार से सेवा करनी चाहिए। कोई समय, कोई शक्ति, कोई क्षण, कोई योग्यता, तुम्हारी ऐसी न रह जाए, जो कि जन समाज की सेवा में लग न जाए। तो यह गंगा की तरह लहरा करके करो, और बल कहाँ से आता है? अब आप देखिए स्वामी जी महाराज के वचन में कितनी सत्यता है। कहते कि तुमको मालूम है यह शक्ति कहाँ से आ रही है? तो भाई देखो सब नदियों का उद्‌गम कहाँ है? है न, अरे वहीं न बर्फ जमती है, जल-कुण्ड सब वहीं पर तो हैं। मानसरोवर उसी पर तो है? तो यह सब शक्ति का जो भण्डार है, वह कौन है? जिसमें किसी प्रकार की क्रियाशीलता शेष नहीं रही, सर्वशक्ति का भण्डार वह है। और वह अचल हिमाचल होकर बैठा है, अप्रयत्न होकर बैठा है, करणीय कुछ भी उसमें शेष नहीं है।

●

प्रवचन 3

मानव जीवन की जो व्याख्या की जा रही है, वह तो मानव जीवन का चिरंतन सत्य है। लेकिन एक विशेष रूप से उसको संजोया गया है; एक विशेष रूप से उसे समाज के सामने प्रस्तुत किया गया है। तो यह ढंग जो है, यह शैली जो है, मनुष्य के जीवन को समझने की शैली और उसको सफल बनाने की शैली यह अपने आप में अनोखी है। ऐसा आप सभी जानकार भाई-बहन किताब पढ़ते हैं। तो मजहबी सीमाओं से अलग, मत-भेदों से अलग, वर्ग सम्प्रदाय इत्यादि की सीमाओं से मुक्त, वैचारिक रूढ़ियों से मुक्त शुद्ध सत्य ही मानव-जीवन के उद्धार के लिए, कल्याण के लिए, समाज के सामने आ जाए इसी उद्देश्य से महाराज जी ने इस विचार-प्रणाली का गठन किया।

आपने साहित्य पढ़ा होगा और उसमें देखा होगा कि कहीं पर उस साहित्य में स्वामी जी महाराज का नाम नहीं है। कहीं पर उस साहित्य में आप ऐसा नहीं देखेंगे कि यह लिखा गया हो कि यह हिन्दुओं का धर्म है और यह गैर हिन्दूओं का धर्म है। कहीं भी आपने ऐसा नहीं देखा होगा कि उस साहित्य में लिखा गया हो कि यह स्त्रियों का कर्तव्य है और यह पुरुषों का कर्त्तव्य है। देखा है ऐसा कहीं? कहीं नहीं। क्या अर्थ है? कि लिंग-भेद, वर्ग-भेद, मतभेद, मजहब-भेद, सम्प्रदाय के भेद, ईश्वरवादी, अनीश्वर वादी, साकार उपासना, निराकार उपासना, इस प्रकार की जहाँ भी कोई बात होगी उसको स्वामी जी महाराज ने इस विचार-धारा में प्रवेश नहीं करने दिया। क्यों? क्योंकि उन्होंने एक ऐसी चीज मानव-समाज के सामने रखना पसंद किया कि जिसमें किसी प्रकार का भेद प्रवेश न कर सके।

सब प्रकार की भेद की सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ, सारे विश्व का मानव, मानव होने के नाते एक स्थान पर बैठकर जीवन की समस्याओं को सुलझा सके। तो बात तो चिर पुरातन है लेकिन शैली अपूर्व है। ठीक है न। बात तो चिर पुरातन है। जब से सृष्टि की रचना हुई, जब से मानव-समाज हुआ, तब से मानवता की जागृति के लिए मानव समाज के कल्याण के लिए शांति, मुक्ति, भक्ति की प्राप्ति के लिए सत्य का प्रतिपादन होता आया है ग्रंथों के द्वारा और संतों के द्वारा और अनुभवी जनों के द्वारा। वे ही बातें हैं यहाँ।

विशेषता क्या है ? तो स्वामी जी महाराज ने यह चेष्टा की कि भाई किसी बाहरी मतभेद के आधार पर साधक-समाज में विभाजन न हो जाए। तो सारे भेदभावों के सब कारणों से अलग करके इसको बचा करके और एक ऐसा स्तर तैयार किया गया, जहाँ सब भेदभाव छोड़कर व्यक्ति, व्यक्ति के नाते, मानव होने के नाते परस्पर बैठ करके विचार कर सके। हिन्दू हिन्दू बना रहे, मुसलमान मुसलमान बना रहे, ईसाई, ईसाई बना रहे, कोई बात नहीं है, कोई फर्क नहीं पड़ेगा लेकिन अगर मानव सेवा संघ के सदस्य वे बन गये तो उनके सामने एक सूत्र आ गया, एक मन्त्र आ गया। क्या आ गया ? कि जो नहीं करना चाहिए वह किसी भी हालत में किसी भी कारण से, किसी भी भय से, किसी भी प्रलोभन से हम नहीं करेंगे। जो नहीं करना चाहिए हम नहीं करेंगे तो यह हिन्दुइज्म है कि मौहमडनइज्म है ? क्रिशचन इज्म है कि ह्यूमनिइज्म है। क्या है ? बताइए ? जी ? मानवता वाद है जो नहीं करना चाहिए सो नहीं करेंगे।

अब आप सोच करके देखिए कि एक अगर हिन्दू अपने को कहता है कि मैं बहुत ऊँचे संस्कार वाला हूँ और मैं बड़ी अच्छी परम्परा वाला हूँ, ऐसी हम लोगों की धारणा होते हुए भी जो नहीं करना चाहिए सो करता रहेगा तो उसका कल्याण हो जाएगा ? नहीं हो जाएगा। कोई कहे कि हम

तो इस्लाम में विश्वास रखते हैं, कोई कहे कि हमारे तो तरण तारण करने वाले, जगत् के बँधे हुए लोगों को परित्राण दिलाने वाले खुदा के पुत्र जिसेस क्राइस्ट आ गए तो हम तो जिसेस क्राइस्ट में विश्वास करते हैं और उसी विश्वास से हमारा कल्याण होगा, ऐसा कोई मानता है। बहुत से लोग ऐसे मानने वाले हैं। अब उनसे भी पूछिये उनके यहाँ भी जो बातें मना की गयी है कि ऐसा मत करना, ऐसा मत करना, ऐसा मत करना। तो जो नहीं करना चाहिए वह अगर जिसेस क्राइस्ट में विश्वास करने वाला भी अकरणीय करता रहेगा तो उसका कल्याण हो जाएगा? नहीं होगा। तो मानव-सेवा संघ के रूप में संघ के प्रणेता संत ने सच पूछिए तो मानव-धर्म को ही सब लोगों के सामने प्रस्तुत किया है। और हम सभी प्रभु की विशेष कृपा के पात्र हैं, संत की सद्भावना के पात्र हैं जिन्होंने हम भाई-बहनों को मत-भेदों के चंगुल से छुड़ा करके शुद्ध सत्य पर विचार करने के लिए और उसका अनुसरण करने के लिए एक आधार दे दिया। मानव सेवा संघ कोई संगठन नहीं है, कोई दल बन्दी नहीं है और इस संघ के माध्यम से संघ के मानने वाले और संघ के संचालक किसी प्रकार का लाभ उठाने की दृष्टि नहीं रखते हैं, बड़ा शुभ लक्षण है, बड़ी बढ़िया बात है।

जैसे कि कल भी मंत्रियों की गोष्ठी हो रही थी तो हमारे सत्संग प्रेमी, भाई बन्धुओं, शाखाओं के प्रेमी, शाखाओं के प्रतिनिधि जो भी यहाँ उपस्थित हो सके हैं उन लोगों ने अपनी-अपनी चर्चा चलायी अपनी-अपनी बात बताई मुझे बड़ा हर्ष होता है। मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है कि आप जो मंत्रियों के मुख से रिपोर्ट सुनते हैं तो उसमें ऐसी चेष्टा नहीं है कि काम होता हो कम और रिपोर्ट में सुनाया जाता हो ज्यादा। एक भी शाखा ऐसी नहीं है जो इस प्रकार की टेन्डेंसी से काम करे। आपने देखा कि कितनी विनम्रता, कितनी अहंकार शून्यता से हमारे कार्यकर्ता आपके सामने

उपस्थित होते हैं, और कितने संकोच से, थोड़ी सी बात कह करके, प्रणाम करके हमारा आपका सद्भाव मान करके जल्दी से अपना वक्तव्य खत्म कर देते हैं। ऐसी चेष्टा नहीं करते हैं जिससे अपने को शो किया जाए कि हम बड़े कार्यकर्ता हैं, हमारे यहाँ ऐसा होता है, ऐसा होता है सो नहीं, जहाँ तक सम्भव है उनसे अपनी त्रुटियों का भी उल्लेख कर देते हैं। यहाँ-यहाँ अभी इतना ही हो रहा है, अब ज्यादा हम करना चाहते हैं इसका अर्थ क्या है? इसका बहत अच्छा अर्थ यह है कि सचमुच जिस उद्देश्य को लेकर मानव-सेवा-संघ बनाया गया हमारे सभी कार्य कर्ताओं, शाखाओं के प्रतिनिधियों, मंत्रियों, और जो शाखा के प्रतिनिधि और मंत्री नहीं हैं, जो आजीवन सदस्य, साधारण सदस्य हैं, प्रेमी हैं, मित्र हैं जो यहाँ आये हैं, सबके भीतर यह दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट है कि इस संस्था में शामिल होने का अर्थ यह है कि मैं साधना के द्वारा अपना कल्याण करूँ और अपने ही समान अन्य भाई-बहनों को सहयोग दूँ। तो जहाँ केवल साधन और सेवा का प्रश्न है, वहाँ और कोई दूसरी त्रुटि, दूसरा विकार शामिल हो ही नहीं सकता। जगह-जगह पर जहाँ शाखाएँ बनी हैं, वे भाई सत्संग का विशेष आयोजन करने की चेष्टा में लगे भी रहते हैं। सूचनाएँ आती भी रहती हैं और जहाँ तक सम्भव हो सके मैं चेष्टा करती भी हूँ कि शाखाओं के भाई-बहनों के पास वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य मैं पहुँच जाऊँ और मिलकर के हम सब लोग विचार करें, अपनी-अपनी साधना में आगे बढ़ें। तो जहाँ-जहाँ भी जाने का अवसर मिलता है वहाँ के अध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, मन्त्री और नगर-निवासी, साधारण सदस्य, आजीवन सदस्य और ऐसे सत्संगी भाई-प्रेमी मानव सेवा संघ का खूब काम करते हैं, सहयोग देते हैं।

जो किसी प्रकार के सदस्य नहीं हैं, सत्संग की दृष्टि से इसमें कोई भेदभाव नहीं रहता। सब भाई-बहनों का मूल्य बराबर है किस दृष्टि से कि

जो अपना कल्याण करना चाहता है, वह मेरा सेव्य है, जो समाज के उत्थान में हाथ डालना चाहता है, वह मेरा सहयोगी है। तो प्रभु के नाते सभी अपने हैं, जगत् के नाते सभी अपने हैं इस प्रकार की एक अपनेपन की भावना संघ के माध्यम से बृहत् समाज में फैल रही है, यह बहुत अच्छी बात है, शुभ लक्षण हैं। और मुझे ऐसा लगता है कि मानवता के संरक्षक और मानव-समाज की पीड़ा से पीड़ित होने वाले संत के प्रति यदि मेरी कोई श्रद्धा है, भक्ति है, निष्ठा है, जो भी कुछ है तो वह यही है कि हम सब भाई-बहनों के बीच में एक अपनेपन की भावना का विस्तार हो, उससे अपना चित्त शुद्ध हो, जिसके द्वारा समाज में से बुराई मिटे। और हमारे-आपके इस सुलझे हुए जीवन से ही उस ब्रह्म-लीन संत को हम आनंदित कर सकते हैं और उनके प्रति सच्ची भावना और श्रद्धा प्रकट कर सकते हैं।

ये तो सबके लिए हो गयी। अब आपने थोड़ी-सी बात आश्रमों के बारे में सुनी, पाँच आश्रम स्थापित हैं मानव-सेवा-संघ के। वृन्दावन आश्रम जहाँ आप विराजमान हैं। गाजीपुर मैं आरोग्य आश्रम है आपने सुना। यह आरोग्य आश्रम एक डॉक्टर के द्वारा संचालित था। उनके हृदय में जब पहले-पहल उन्होंने बातचीत की स्वामी जी महाराज से, तो उन डाक्टर सज्जन ने यह कहा कि महाराज जी, जब मैं आरोग्य आश्रम सँभालता हूँ और रोगियों की सेवा करता हूँ, तब यह सब काम करता हूँ, आमदनी होती है यह सब बात है, तो मेरे भीतर ऐसा लगता है कि मनुष्य का किया—कराया जो कुछ है, वह अगर समाज के काम नहीं आया तो करने वाले कर्ता का चित्त शुद्ध नहीं होगा। यह उनकी भावना थी। तो सजाया, बनाया और खूब हँसे और साथ के लोग हम लोग मिलकर बात करें तो कहें कि बाप जैसे बेटी को पैदा करता है और पढ़ा के लिखा के, सजा के, शृंगार करके धन-सम्पत्ति देकर के और अच्छे योग्य वर के हाथ में

सौंप देता है। ऐसी भावना थी कि हमने जो कुछ किया है, वह अगर समाज की सेवा में काम में नहीं आया तो मेरा चित्त शुद्ध नहीं होगा। ऐसा सोच करके उस सज्जन ने अपना जीवन-दान भी किया, आजीवन कार्यकर्ता भी बने मानव-सेवा-संघ के और उनके पास जो कुछ था वह संघ को समर्पित कर दिया, जिसके बारे में अभी आपने थोड़ा सा डिटेल सुना।

ऐसे ही दक्षिण बिहार में राँची में निर्माण निकेतन आश्रम बना है। राजस्थान में जयपुर में प्रेम निकेतन आश्रम बना है, राँची में राँची शहर से कुछ दूर पर एक और आश्रम की स्थापना हुई थी नवडीहा आश्रम। और महाराष्ट्र में उल्हास नगर में। उल्लाहस नगर के सत्संग प्रेमियों ने भी एक छोटी-सी जगह बना कर रखी है मानव सेवा संघ की। तो आपने आरोग्य आश्रम के बारे में सुना गंगा जी के तट पर है, बहुत ही अच्छी जगह में है और बहुत अच्छी भावना से यह आश्रम बना है। क्योंकि दान करने वाले की भावना आपने सुन लिया न? उसके दिल में यही धुन थी कि हमने जो कुछ किया वह समाज के काम नहीं आया तो हमारा चित्त शुद्ध नहीं होगा, कितनी ऊँची भावना से वह बना। ऐसे ही जयपुर के प्रेम निकेतन आश्रम के बारे में आपने सुना। बड़ी-सी जगह है। साधकों के रहने के लिए छोटी-छोटी कुटिया हैं, मीठे पानी का कुँआ है और गौशाला भी रखा गया है। तो काम बहुत छोटे स्केल पर चला है मानव सेवा संघ का, निर्माण आश्रम की आज हालत ऐसी है। खूब घना बगीचा है वहाँ, आम, लीची, जामुन, काजू का बगीचा है। अमरुद का बगीचा है। खूब फल हैं। कुआँ भी है, पहाड़ी दृश्य भी बड़ा सुन्दर है शहर से दूर एकदम निर्जन शांत स्थान में हैं। तो यह सब जो आपने सुना इन सब आश्रमों की स्थापना के पीछे यह बात नहीं थी कि मानव सेवा संघ का खूब निर्माण कार्य हो जाए।

मुझे एक वाक्य मिला था स्वामी जी महाराज का, वह मैं सुनाऊँ आपको। बड़ी बढ़िया बात है। एक बड़ी अच्छी महाराज जी की वाणी है। आश्रम बनाने की आवश्यकता केवल इसलिए होती है, कि जहाँ हम लोग एकसंकल्प होकर बैठ सकें। वह भी इसलिए कि मानव मात्र का सब प्रकार से विकास कैसे होगा, इस पर विचार कर सकें। आश्रम बनाने के लिए आश्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती है। आश्रम के पीछे उद्देश्य होता है सबका सब प्रकार से विकास। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आश्रम निर्माण की जरूरत होती है।

अत: इस मूल बात को ध्यान में रखना होगा कि अपना उद्देश्य निर्माण नहीं है आश्रम बनाने में। बन जाए यह उद्देश्य नहीं है। क्यों बनाया? तो इसलिए बनाया कि सबका सब तरह से विकास हो। उस आश्रम में वास करके हमारा विकास हो और हमारे उस आश्रम वास से समाज का विकास हो। इसीलिए वह बनाया। एक दु:ख की बात भी मुझे करनी पड़ेगी और आप ही योग्य पात्र हैं, जिनके सामने दु:ख प्रकट करूँ। तो दु:ख की बात यह है कि महाराज जी ने बड़ी चेष्टा की कि खुली जगह में आश्रम बना करके साधक गण बैठेगे निश्चिन्तता से साँस लेगें। संसार का थका हुआ आदमी वहाँ बैठ करके विश्राम लेगा और अपने विकास के बारे में अपनी साधना का निर्माण करेगा और उसके विकसित जीवन से समाज को आराम मिले इससे उद्देश्य से बनाये गए। निर्माण निकेतन आश्रम राँची का भी साधकों से शून्य पड़ा है।

आरोग्य आश्रम गाजीपुर भी साधकों के बिना ऐसे ही पड़ा है। थोड़े कुछ प्रेमी लोग हैं, जो किसी तरह जिंदा रख रहे हैं। प्रेम निकेतन आश्रम जयपुर भी साधकों के बिना अविकसित रूप में पड़ा है। तो अपने भाई-बहनों को मैं यह सुना रही हूँ कि भाई सत्संग में तो हम लोग बार-बार इस बात को कहते हैं कि भाई मोह का घेरा तोड़ो। संतान जब सयानी हो गयी, वयस्क हो गयी तो उसके पीछे मत पड़े रहो।

मोह के सम्बन्ध में सारी जिन्दगी बिताएँगे। साधना के सम्बन्ध से थोड़ा भी समय नहीं देगें तो व्याख्यान देने से और व्याख्यान सुनने से ममता का नाश नहीं होगा। ठीक है न। अरे एक बार हाँ तो कहिए। तो मैं तो कहती हूँ।

आगे चल करके स्वामी जी महाराज ने रजिस्टर्ड सोसायटी और विधि-विधान के बारे में भी हम लोगों को समझाया। एक बार ऊषाकान्त भाई और मैं हम दोनों चिन्तित हो रहे थे किसी काम से। वह बातचीत महाराज जी से हुई तो उन्होंने कहा कि देखों भाई यह भी मैंने लिखकर रखा है, खोजूँगी तो समय लग जाएगा मुँह जबानी सुना देती हूँ देखों भाई यह जो संस्था बनायी है और सोसायटी को रजिस्टर्ड कराया है और विधि विधान बनाया है तो तुम लोगों को दु:खी और चिंतित बनाने के लिए नहीं किया है। भार नहीं है। यह सब काम किसलिए किया गया? यह सब काम इसलिए किया गया कि जो साधक ममता के फेर में पड़ा हुआ, फँसा हुआ, उसमें से निकल करके अपनी परिस्थिति, अपनी योग्यता के अनुसार थोड़ा-थोड़ा आगे बढ़ना चाहता है सो उसको एक आधार दिया जाए। चिंतित मत हो जाओ दु:खी मत हो जाओ, भार मत मानों।

आपने देखा होगा, प्रारम्भ से लेकर आज तक स्वामी जी महाराज की भावना को जितना हम लोग ग्रहण कर सके, उसके आधार पर हम चलना चाहते हैं, आपको चलाना चाहते हैं। तो जरूरत मैं बता रहीं हूँ, आश्रम जो बन गए हैं, पाँच जगह का नाम ले लिया मैंने। और भी बहुत से बन सकते थे, लेकिन हम लोग अपना काम इसलिए नहीं बढ़ाते हैं कि भाई साधक हैं और साधक का काम इतना नहीं बढ़ना चाहिए कि वह काम में ही उलझ जाए, उसकी साधना टूट जाए। इसलिए हम लोग प्रवृत्ति के विस्तार के फेर में नहीं हैं। मैं तो इस फेर में हूँ कि छोटी से छोटी प्रवृत्ति हमारे सच्चे साधकों के द्वारा संचालित होने लग जाए तो प्रधानता

किस बात की होगी ? प्रधानता इस बात की होगी कि उस साधना के द्वारा सेवा करने वाले का चित्त शुद्ध होगा। पहले सेवा करने वाले की शक्ति बढ़ेगी, पहले सेवा करने वाले की राग की निवृत्ति होगी और उस विकसित जीवन से व्यापक सेवा फैलेगी पीछे। यह उसमें मुख्य बात रहती है।

आप सभी भाई-बहनों ने जगह-जगह शाखाओं के द्वारा चलाए गई छोटी-छोटी प्रवृत्तियों के बारे में सुना। करनाल में जो सेवा-प्रवृत्तियाँ कुशलता से चल रही हैं, प्रेम और विश्वास से चल रही है, उसका कारण क्या हैं ? आप सोच करके देखिए। कारण आपको मालूम होगा कि वहाँ पर एक जीवन-दानी मानव-सेवा-संघ का आजीवन कार्यकर्त्ता खड़ा है, इसलिए चल रहा है। आजन्म ब्रह्मचारी रहकर साधना और सेवा में जीवन लगाने का व्रत जिसने लिया उसके जीवन के रस से सेवा-प्रवृत्तियाँ पनप रही हैं। पैसे से सब काम नहीं होता है। जीवन के रस से प्रवृत्तियाँ फैलती हैं। फिर भी और भी देखिए जब से यह सब काम होने लग गया। और-और शाखा सभाओं में भी काम हो रहा है, एक ही जगह की बात नहीं है। और काम की दृष्टि से बड़े काम का महत्त्व नहीं है। चूँकि हम लोग साधना की दृष्टि से काम करते हैं तो साधना में आपकी कितनी निष्ठा बढ़ रही है, अपने भीतर आप कितनी शांति पा रहे हैं, अपने भीतर आपके स्वयं कितना बल आ रहा है यह देखा जाता है। तो आप देखेगें कि भाई हरिराम जी ने स्वामी जी के परामर्श से जैसे-जैसे अपना जीवन आगे बढ़ाया। सर्विस में थे, एम०ए० बी०एड० है। काफी दिनों तक उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में काम किया और करते-करते जब उनके भीतर में इतना बल आ गया कि अब मैं बिना नौकरी किये सारा समय जन-समाज की सेवा में लगाऊँ तो इन्होंने नौकरी छोड़ दी। तो यह बाहर का बल है कि अन्दर का ? अन्दर का है। अब इस प्रकार का व्यक्ति जिसको अपने सुख-सुविधा की चिंता नहीं है, सेवा जिसकी साधना है, वह जिस जगह

पर खड़ा हो जाएगा, वहाँ पर प्रेम और विश्वास और सहयोग जरूर बढ़ जाएगा। एक उदाहरण की बात हो गयी। दूसरी ओर भीतरी बात देखिए।

जब-जब उन्होंने कार्य-क्षेत्र का विस्तार किया, काम किया तो सुनने में तो बड़ा अच्छा लगता ऐसा लगता कि यह तो बड़ा बढ़िया काम है मानव-सेवा संघ का। लेकिन उससे भी बढ़िया बात है, वह मैं आपको बताती हूँ । महाराज जी ने भी सलाह दी, सुझाव दिया और काम के लिए मुझे ठोक पीट कर खड़ा कर दिया तो हमेशा ही हरिराम भाई को, शांति बहन को, वहाँ के कार्यकर्ताओं को और दूसरी शाखाओं के कार्यकर्ताओं को जहाँ कहीं कार्य-क्षेत्र के विस्तार का वर्णन होगा वहाँ मैं बड़ी नम्रता से, चुपचाप से, धीरे से, एकांत में इन सारे कार्यकर्ताओं की सलाह देना शुरू करती देखो भैया, मानव सेवा संघ में अपना कल्याण और सुन्दर समाज का निर्माण ये दोनों बातें एक-दूसरे की सहायता करने वाली है। फिर क्या होगा? तो सेवा का अन्त होना चाहिए विरक्ति में, सेवा का अन्त होना चाहिए त्याग में, सेवा का अन्त होना चाहिए आन्तरिक शांति में। तो सेवा करने वाले भाई-बहनों को इस बात पर खूब ध्यान देना चाहिए कि हम सेवा करने के द्वारा राग-रहित हो रहे हैं कि नहीं हो रहे हैं। नहीं तो क्या होगा? जब तक शरीर में युवावस्था की एनर्जी है, बड़ा अच्छा लग रहा है, भाई बढ़िया काम हो रहा है, लेकिन जिस दिन यह शक्ति घटेगी, उस दिन तुम अपने को सूना-सूना तो नहीं अनुभव करोगे।

चला नहीं जाता है, चलना कम हो गया, बोला नहीं जाता है तो बोलना कम हो गया। रोगियों की सेवा नहीं बनती है तो सेवा छूट गयी। तो जब बाहर की क्रियाओं के द्वारा एक आनंदित होने का जो अपने पास औजार है तो जब कल पुर्जे ढीले ढाले हो जाएँगें, टूट फूट जाएँगें तो उसके बाद तुमको कैसा लगेगा, उस पर भी ध्यान रखो।

तो मानव सेवा संघ का सिद्धान्त क्या है? कि सही प्रवृत्ति और सहज निवृत्ति दोनों साथ-साथ चलना चाहिए। तो मानव सेवा संघ के कार्यकर्ता जो हैं, जो लोग सेवा कार्य में खूब भाग लेते हैं, रस लेते हैं, हम लोगों की जो अलग की गोष्ठी होती है आपस की, उसमें हम लोग इस बात पर विचार करते हैं, कि भई काम तो भले करो लेकिन काम किस लिए कर रहे हैं हम? न करने के जीवन में प्रवेश करने के लिए। सेवा प्रवृत्ति में जरूर लग जाओ लेकिन सेवा प्रवृत्ति की सफलता कब होगी। जब जीवन में सहज निवृत्ति आ जाए, तो प्रति दिन के दैनिक जीवन में संघ की यह सलाह है कि काम करो और शांत रहो, काम करो और शांत रहो। इस मूक सत्संग की पद्धति ने, जो स्वामी जी महाराज ने हम लोगों के साथ जुटा दी, बड़ा उपकार किया ऐसा मैं मानती हूँ।

बाकी जो हमारे कार्यकर्ता हैं, अलग-अलग शाखाओं के प्रेमी भाई हैं तो उनसे मैं निवेदन करूँगी कि सभी लोग करनाल के समान बाहर से सेवा-प्रवृत्तियों को फैलाकर नहीं कर सकते हैं, तो इसके कारण से वे संकोच में न पड़ें, अपने को छोटा न समझें। बातें जो आपके सामने प्रस्तुत की जाती हैं वे उत्साह दिलाने के लिए आगे बढ़ाने के लिए। तो आप लोग कोई संकोच मत करिएगा कि अरे हमारे यहाँ तो इतना बढ़िया कार्य नहीं हो रहा है। संकोच के लिए नहीं है, उत्साह के लिए है। दूसरी बात यह है कि सेवा का विस्तार करने से पहले अपने जीवन के निर्माण पर ध्यान देना जरूरी है। स्वामी जी महाराज ने पहले हरिराम के जीवन का निर्माण किया उनको आजीवन कार्यकर्ता बनाया। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया, धन संग्रहित न करने का व्रत लिया, कमाई हुई सम्पत्ति के आधार पर उन्होंने सेवा की थी। बार-बार आपसे यह कहते हैं कि भई, जगत् की उदारता और प्रभु की कृपालुता में कमी नहीं है। तो यह कोई पुस्तक में से पढ़ करके सुनी सुनायी बात वे नहीं कहते हैं।

उन्होंने करके देखा है और उन्होंने ऐसा पाया है। खुद जो कमाते थे उसका एक-एक पैसा पहले जन समाज में लगाना आरम्भ किया, लगाया, संग्रह नहीं किया, अपने लिए नहीं रखा तो ये सब जो बातें जीवन में हुईं यह क्या है? यह व्यक्ति के निर्माण का क्रम है। और जब व्यक्ति बना तब उसके द्वारा सेवा बन रही है। तो आश्रमों की चर्चा इसलिए आपके सामने की गयी कि आप भाई-बहनों में से जिस किसी के हृदय में यह उल्हास आए, उत्साह आए कि अच्छा, ठीक गृहस्थी का काम अब एक किनारे लग ही गया और जो बाकी है वह भी हो ही जाएगा। तो मानव सेवा संघ ने इतना बढ़िया-बढ़िया आश्रम बना के रखा और इतना प्रलोभन पूर्वक आकर्षक वर्णन सुनाया, तो चलो तो एक बार छः महीने रह करके वहाँ अपनी साधना करें, त्याग करें, तप करें, कठिनाई सहें और सेवा में भाग लें और साधन का निर्माण करें। तब अपना कल्याण और सुन्दर समाज का निर्माण हो।

ऐसा उत्साह जगे और जो लोग आश्रम में वास करके अपना कल्याण करना चाहें और आश्रम की सेवा के द्वारा चित्त शुद्ध करना चाहें, उनका स्वागत है। यह आश्रम प्रबन्ध लोगों ने बहुत नम्रता के साथ अहंकार-शून्यता के साथ, छोटा-छोटा वर्णन आपको सुनाया था। लेकिन मैंने उन सबकी ओर से श्रोता भाई-बहिन जो यहाँ एकत्रित हैं, उनको आश्रम की सेवा की प्रेरणा दे दी। प्रलोभन से नहीं, मेरा कोई लालच नहीं है और आप पर दबाब नहीं है। मानव सेवा संघ ने मनुष्य को स्वाधीनता दिलाना पसंद किया। स्वामी जी महाराज ने कभी भी व्यक्ति को पराधीन बनाना पसंद नहीं किया। तो आप ऐसा मत सोचिएगा कि अरे कहाँ से कहाँ आ गए वृन्दावन आश्रम में कि एक जबाबदेही सिर पर चढ़ गयी, ऐसा मत सोचिएगा। मेरे कहने से नहीं, ग्रंथ में लिखे हुए होने से नहीं, आप स्वयं अपना कल्याण सोचें।

जो लोग जैसे शादी ब्याह किये हुए लोग महाराज के पास आते, युवक आते, लड़कियाँ आतीं। स्वामी जी महाराज के प्रेमी मित्रों के बहुत से युवक हो गए थे। लड़के, लड़कियाँ, बेटे, बहुएँ आतीं सब महाराज के सामने और बातचीत होने लग जाती। कहते महाराज, कोई सेवा बताइए, कोई कार्य बताइए, हमको भी कुछ कहिए हम भी कुछ करें, तो महाराज उससे पूछते अच्छा बोलो तुमने ब्याह किया है कि नहीं तो अगर वह लड़का कह देता हाँ महाराज, शादी तो हो गयी है। तो जा, जा, जा तेरी बिकी हुई जिन्दगी लेकर क्या करूँगा मैं। बिक गयी है जिन्दगी। तो ऐसा सुन करके आप लोग डरिएगा नहीं। सबके सब बहुत से बिके हुए बैठे हैं, ऐसा सोचकर घबराइए मत। अब मैं बिकी हुई जिन्दगी का भी उपयोग करना चाहती हूँ जिससे कि सौदा वापस हो जाए। तो जो सचमुच अनेक जन्म हम लोगों ने सुख-दुःख के भोग में बिताए। अगर आज जैसे कि कई उत्साही आजीवन कार्यकर्त्ताओं ने आजन्म अविवाहित रहकर सेवा और साधना में जिन्दगी का सदुपयोग करने का व्रत ले लिया। उसी प्रकार से आज भी और आगे भी इस तरह के साधक आते रहेंगे। तो कोई ऐसा निकल आए वीर, जो कि साधना और सेवा के लिए अपनी युवावस्था को न्यौछावर करना चाहे तो बहुत बढ़िया बात है।

अगर उसके बाद ऐसे भी वीर, माताएँ, बहनें, भाई होते हैं जिनका स्वास्थ्य अच्छा है, जिनकी घर की परिस्थिति ऐसी बन गयी है कि घर छोड़ा जा सकता है, तो अच्छा स्वास्थ्य लेकर और सेवा का व्रत लेकर आश्रमों में आ जाएँ। और मैं तो यह भी कहती हूँ कि एकदम से घर से नाता तोड़ने का साहस न भी होता हो तो कम से कम दो-दो या चार-चार महीने के लिए आकर बैठो, साधन का निर्माण करो, समाज की सेवा करो, तो उसके द्वारा चित्त की शुद्धि होगी, शान्ति मिलेगी समाज कुछ आगे बढ़ेगा। तो यह सब भी आप लोगों के सोचने विचारने के लिए कह दिया मैंने और भी एक हँसी की बात बता दूँ।

मन्त्री जी बैठे है आनन्द नारायण भाई साहब। हर दो तीन महीने में शाखा सभाओं में, जन-जागरण का काम करके, सत्संग का आयोजन करके लौट के आती हूँ मैं वृन्दावन। तो जब आती हूँ तब इनके पास 5, 10, 20, 30 चिट्ठियाँ रखी रहती है। भाई साहब लेकर मेरे पास बैठते हैं। बहन जी ये चिट्ठियाँ आई हैं। कैसी चिट्ठियाँ हैं? आश्रम में आने वाले लोगों के प्रार्थना-पत्र हैं, अच्छा भाई साहब सुनाइए एक-एक करके पढ़िए। सबसे पहले मैं पूछ लेती हूँ भाई साहब, एक ही बात बता दीजिए कि प्रार्थना पत्र जो आया है तो प्रार्थी ने अपनी उम्र क्या लिखी है? तो कितने दु:ख की बात है, उसमें लिखा रहता है, मेरी उम्र 77 साल की है, मेरी उम्र 80 साल की है। और जरा आँखें अब ठीक से काम नहीं देती, देखने में असुविधा हो रही है, लेकिन आप जो कहेंगे सो मैं सेवा करूँगा। यह भी लिखा था उसमें कि आप जो कहेंगे सो मैं सेवा करूँगा और आश्रम में वास करूँगा। तो मैंने कई अपने लोगों के साथ बैठ करके विचार किया। हमने कहा कि देखिये ये सज्जन जी आश्रम आकर वास करने का प्रार्थना पत्र भेज रहे हैं, हम लोगों की, मानव सेवा संघ की सेवा और सहानुभूति के पात्र नहीं हैं, ऐसा मैं नहीं मानती हूँ। इन्कार तो जरूर करना पड़ता है, यद्यपि वे लोग सेवा के पात्र हैं।

उनकी सेवा अगर मुझसे बन पड़ती तो मैं जरूर करती। शाखाओं में भी मैं सुना कर आती हूँ कि ऐसी प्रार्थनाएँ अब बहुत आने लग गयीं, कि आश्रम में हमको रख लीजिए और आँख से हमको दिखता नहीं है और यह सब लिखते हैं। इतनी उम्र है और आप जो कहेंगे सो हम काम करेंगे यह भी लिखते हैं, तो मैं कहती हूँ कि वे हमारी सेवा के पात्र नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है। सेवा के पात्र तो जरूर है लेकिन आश्रम उनकी सेवा तब न करे, जब उतनी ही संख्या में चाहे उससे कुछ कम ही सही ऐसे स्वस्थ शरीरों का प्रार्थना पत्र आए कि हम 58 वर्ष में रिटायर्ड हो गए हैं

कि 50 वर्ष की उम्र में हमारी गृहस्थी का काम हो गया है, तो मोह के बन्धन का नाता हमने निभा लिया, अब प्रभु के नाते प्रभु के असमर्थ प्राणियों की सेवा का माध्यम चाह रहे हैं, इसलिए हम आश्रम में आना चाहते हैं, कृपापूर्वक मुझको स्वीकृति दी जाए। तो कुछ स्वस्थ शरीर वाले कुछ सम्पन्न व्यक्ति सम्पत्ति लेकर के, कुछ उदार हृदय के लोग अपनी चित्त-शुद्धि की हैसियत से आश्रम की सेवा करने के लिए जब सेवक आ जाएँ तब मैं सब वृद्धों को इकट्ठा कर लूँ कि आओ भाई। लेकिन बड़ा दुःख है कि जवानी तो हम बिता ही देते हैं मोह के बंधन में, रिटायर्ड होने के बाद भी अवकाश ग्रहण करने के बाद भी संतान के बालिग हो जाने के बाद भी भगवत् नाते कुछ करना नहीं चाहते हैं।

आखिरी-आखिरी क्षण तक थोड़ी-सी भी शक्ति है, तो बेटे के बेटे को, और पोतों के बेटों को, सँभालने में लगा देंगे और जब हर प्रकार से असमर्थ हो जाएँगे, जब परिवार ठुकरा देगा जब कोई कहीं आधार नहीं दिखाई देगा, तब कहते हैं कि आश्रम में वास दे दीजिए। तब भी मैं इन्कार करने में दुःख पाती हूँ। मानव सेवा संघ के कार्यकर्त्ता जो लोग हैं, ऐसी दशा में भी इन्कार करना नहीं चाहते। लेकिन क्या करें फिर? जब शक्तिशाली सेवक सेवा करने अपनी चित्त-शुद्धि के लिए आएँ तब में उन असमर्थ शरीरों को स्थान दे दूँ, तो यह भी Indirectly एक अपील है, समर्थ सेवा भावी भाई-बहनों से। यह बात भी हो गयी।

●

प्रवचन 4

सृष्टिकर्त्ता है और उनकी सृष्टि है। अतिविशाल है, हमारी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की सीमा में समाने वाली नहीं है। हम सब कुछ जान भी नहीं सकते हैं। बहुत थोड़ा-सा अंश और बहुत थोड़े काल के लिए हम लोगों के सामने आता है..... सदा-सदा के लिए जो जीवन का आधार है वह परमात्मा। हम सब भाई-बहन अपने जीवन के उत्थान के लिए यहाँ पर एकत्रित हुए हैं। जो कुछ आप सुन रहे हैं, जो कुछ सोचने-विचारने में आ रहा है, मेरा संघ की ओर से आप भाई-बहनों से यह निवेदन है कि कम से कम इतना व्रत लेकर के ही हम लोग यहाँ से उठे कि भाई सृष्टि का छोटा-सा थोड़ा-सा भाग, जिसके सम्पर्क में हम आते हैं, कम से कम इस जीवन में थोड़े सा काल जो इस शरीर से धरती पर रहने को मिला है, हम् किसी के साथ किसी प्रकार की बुराई नहीं करेंगे।

यह व्रत हम सब भाई-बहनों को लेना चाहिए। प्रभु की कृपालुता, संत महापुरुषों की सद्भावना और जीवन की महिमा, मानव-जीवन की महत्ता यह है कि अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं के बीच में भी, हम लोग यहाँ बैठ गए हैं जीवन की चर्चा कहने और सुनने। यह अवसर अलभ्य है, कब-कब मिलेगा, बार-बार मिलेगा कितनी बार मिलेगा कोई कुछ नहीं कह सकता है। बड़ा मूल्यवान अवसर है। और इस अवसर को उपस्थित करने में जगत्पति, संत महानुभाव, समष्टि की शक्ति, बृहद् समाज और परिवार सबका सहयोग मैंने लिया है। सबके सहयोग से आप आकर के यहाँ पर बैठे हुए हैं। इतना सहयोग मैंने लिया तो समाज को दिया क्या? सोचना चाहिए कि नहीं? जी सोचना चाहिए। परिवार वालों से छुट्टी लेने से, आपके हट जाने से, कुछ न कुछ तो असुविधा परिवार वालों को हुई ही, फिर भी उन्होंने कृपा करके आपको इजाजत दे दी कि अच्छा भाई जाओ तो उन्होंने जो इजाजत दे दी और हम आकर के यहाँ बैठ गए, उन

सबका सहयोग हमने लिया तो मेरे जीवन में कुछ न कुछ इतना विकास जरूर होना चाहिए कि इस जीवन से परिवार वालों को किसी प्रकार का कष्ट अब नहीं मिलेगा। लाभ तो पहुँचाएँगे, परमात्मा जितना मौका देंगे। जितनी शक्ति देंगे, परिवार के जितने भाई-बहन यहाँ आकर के बैठे हैं, उनको कम से कम इतना व्रत लेकर यहाँ से उठना चाहिए कि अच्छा भाई प्रभु की कृपालुता का तो कोई अन्त ही नहीं है, संत की सद्भावना तो सदैव सबके साथ है। जगत् के रूप में भी परिवार ने जो मुझको सहयोग दिया है, तो अब मैं अपने संकल्प की पूर्ति के लिए परिवार के किसी व्यक्ति को कष्ट नहीं पहुँचाऊँगा। इतना करना चाहिए कि नहीं चाहिए? अगर इतना भी हम लोग नहीं सोचेंगे, तो आगे चलकर के परिवार वालों को दोष देने से कोई फायदा नहीं होगा।

यह प्रकृति का विधान है, संत की खोज है, शोध है, और डंके की चोट उन्होंने मानव समाज को सुना दिया। क्या सुना दिया? प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग नहीं करोगे तो परिस्थिति छिन जाएगी। प्राप्त सुविधा का सहारा लेकर के, सेवा त्याग प्रेम में आगे नहीं बढ़ोगे, तो भविष्य में यह सुविधा नहीं रहेगी। नहीं रहती है, किसी की नहीं रहती है। पश्चिमी दर्शन में, वैस्टर्न फिलोसफी हमारे जमाने में पढ़ाई जाती थी, जिस महाविद्यालय में हमने दर्शन का अध्ययन किया था वहाँ पश्चिम-दर्शन पढ़ाया जाता था, वहाँ पर एक दार्शनिक सिद्धान्त पढ़ाया जाता था। मुझे खूब याद आता है, बहुत वर्ष बीत गए, काफी दिन हो गए 30 वर्ष तो हो ही गए होंगे, उससे भी ज्यादा लेकिन मुझे हर समय याद आता है। जब स्वामी जी महाराज का चित्र मैं देखती हूँ कि प्राप्त परिस्थिति का सहयोग लेकर के सेवा, त्याग, प्रेम में आगे नहीं बढ़ोगे, तो यह परिस्थिति छिन जाएगी, नहीं रहेगी। यह समष्टि की शक्ति का विधान है। तो आज परिवार वालों के दिल में ऐसी सद्भावना जग गयी कि उन्होंने आपको छुट्टी दे

दी कि चले जाओ, चले जाओ भाई सत्संग कर आओ तो यह तो प्रकृति का इंतजाम है, प्रकृति-पति का इन्तजाम है, परमात्मा का इन्तजाम है, यह आदमी का किया हुआ नहीं है, तो ऐसा समझो कि परमात्मा ने और परमात्मा की सृष्टि ने हम लोगों को हमारे कल्याण के लिए सहयोग दिया है।

अब इस सहयोग को लेकर के यहाँ जो कुछ हम कह रहे हैं, सुन रहे हैं, उसके आधार पर सेवा, त्याग, प्रेम के पथ में एक कदम भी अगर आगे नहीं बढ़ाएँगे तो ऐसा सुयोग फिर मिलेगा कि नहीं मिलेगा, कोई नहीं कह सकता है। तब मत कहना कि हमारे पति छुट्टी नहीं देते हैं, उनका विचार बड़ा संकीर्ण है। फिर मत कहना कि हमारी पत्नी बहुत कलह करती है, राजी नहीं होती है, साथ नहीं देती है, बड़ी कठिनाई है। तो यह कलह, प्रतिकूलता, संकीर्णता, जो व्यक्ति में हम लोग देखते हैं अपने प्रतिकूल, मैं खूब अच्छी तरह से उसका अध्ययन करती हूँ अपने लिए। और आपके लिए सुना रही हूँ कि यह पति की संकीर्णता, पत्नी की कलहकारिता और परिवार की नालायकी नहीं है। मत सोचना ऐसा। व्यक्ति में जो दोष दिखाई देता है कि हमारा साथ नहीं दे रहे हैं व्यक्ति, तो व्यक्तियों का दोष नहीं है। किसका दोष है? वह मेरा दोष है।

जब इन्होंने मुझे सहयोग दिया था, जब इन्होंने मेरा साथ दिया था, जब इन्होंने हमारी मदद की थी, तब मैंने अपने को सेवा, त्याग, प्रेम में आगे नहीं बढ़ाया तो यह प्रकृति का नियम है कि प्राप्त अवसर का लाभ नहीं उठाओगे तो अवसर छिन जाएगा, बार-बार नहीं मिलेगा। तो हमारा आपका फ्री च्वायस नहीं है कि इस बार आ गए। हमारे जो उपप्रबन्धक हैं वे कहते हैं कि बहन जी, जब यहाँ से लोग घर जाते हैं तो बड़े आनन्दित होकर लिखते हैं कि नंदा जी, आपके आश्रम में हम आए, सत्संग का लाभ लिया, आप लोगों ने अच्छी तरह से रखा, बड़ा आनन्द आया।

उनके मुख से बड़ा बढ़िया लगता है सुनने में। कहते हैं कि नंदा जी, बड़ा आनन्द आया। तो बहन जी ऐसे लोग पत्र लिखते हैं, बड़ा आनन्द आया। तो हम कहते हैं कि यह सुन करके मैं खुश हो जाऊँ अथवा आप इस अवसर का आनन्द लेकर के वहीं तक सीमा रख लें, तो हमारा आपका सुयोग जो है मिलने का, एक-दूसरे को मदद करके आगे उठाने का यह बार-बार नहीं आएगा। ऐसा हो जाएगा, कोई न कोई कारण बन जाएगा, और कोई न कोई झंझट खड़ा हो जाएगा। तो मैंने मानव के जीवन में जो प्रकृति का विधान काम करता है, सन्त के मुख से मैंने सुना। उसका अर्थ मैंने यह निकाला कि अगर मेरे रास्ते में कोई व्यक्ति ऐसे दिखते हैं कि लगता है, कि ये हमारे बाधक बन रहे हैं तो व्यक्ति पर दृष्टि कभी नहीं रखनी चाहिए। सोचना चाहिए कि मेरी भूल हो गयी। इसके पहले जो-जो सुयोग मुझे मिला था, उस सुयोग को पाकर के मैंने अपना कदम आगे नहीं बढ़ाया, इसलिए सामने प्रतिबन्ध खड़ा हो गया।

एक तो यह निवेदन करना था। बड़ी सजगता की बात है, बड़ी सावधानी की बात है। अल्प शक्ति है, अल्प आयु है, कहाँ तक हम लोग असावधानी में बिताएँगे, कहाँ तक हम लोग शिथिलता में बिताएँगे कितना महँगा दिन जा रहा है, आप स्वयं अपने से विचार कर लीजिए। और मानव सेवा संघ के प्रेमी, संघ के साधक होने का अर्थ यह है कि आप मानव हैं और आप मानवता के प्रेमी हैं, आप मानव हैं और अपने कल्याण के लिए तैयार हैं। आप मानव हैं और समाज की सेवा के लिए तैयार हैं, सेवा भी अपनी साधना है, सेवा से पहले सेवक का कल्याण होता है, पीछे सेव्य को आराम मिलता है। तो स्वेच्छा से अपनी-अपनी परिस्थिति देखकर जिसको जहाँ जैसे बन पड़े, बुराई तो किसी के साथ करना मत और भलाई करना तो इस दृष्टि से करना कि मेरा चित्त शुद्ध होगा।

भलाई के बदले में, नाम-बड़ाई मिले, कुछ हो कुछ हो। एक भाई कल बात कर रहे थे तो बात करते-करते उनके मुख से निकला कि अरे

भाई, आजीवन सदस्य ने कम से कम 101/- रुपया तो दिया है। तो हमने हँसकर कह दिया कि इसलिए ही स्वामी जी महाराज आपका नाम बदला करते थे। ऐसी बात आप कहते हैं तो कुछ नहीं किया, कुछ नहीं किया। सारी जिन्दगी की कमाई सब सुख-भोग में और ममता से सम्बन्ध में सब स्वाहा हो गया और 101 तुमको दिखाई देता है। सोचने की बात है। आश्चर्य है। और फिर जहाँ चित्त-शुद्धि का प्रश्न है, वहाँ दिया हुआ तुमको याद आ रहा है कि मैंने इतना दिया है। यह चित्त शुद्धि का साधन हुआ कि बन्धन हुआ? जी! क्या हुआ भाई, सारी जिन्दगी लाख करोड़ करते-करते कमाया और महाराज कभी हँसते गीता भवन में सब व्यापारी वर्ग वहाँ आता न खूब हँसी होती और हँसते तो कहते कि अरे भैया सारी जिन्दगी की कमाई हीरा, मोती, जवाहरात सब लुगाई के लिए और बाबा जी के लिए पत्रम् पुष्पम् (हँसी की ध्वनि) भाई देखो मानव-सेवा-संघ आपसे कुछ मांग नहीं रहा है।

आप ऐसा आशीर्वाद दीजिए, ऐसी सद्भावना रखिए कि हम स्वामी जी महाराज के बालक जिन्हें स्वामी जी महाराज ने पाल-पोस कर खड़ा किया। हम कभी भी किसी से कुछ माँगे नहीं, किसी से कुछ पाने की आकांक्षा न रखें तो ऐसा मेरा स्तर हो। और महाराज जी की वाणी है, अगर कोई कुछ देने के लिए आता है, कहता है, सुनाता है तो महाराज कहते अच्छा अगर बिना दिये तुमसे नहीं रहा जाता है तो दे दो। फिर आप कहती हैं, कि कम से कम हमने 101 दिया। सोचो कितने दुःख की बात है। बड़े दुःख की बात है। यह दृष्टिकोण रखकर तो फिर लाभ नहीं होगा। अगर दिया हुआ आपको याद आता है, कि हमने इतना दिया है, इसके बदले में आपको इतना करना चाहिए, तो वह ही व्यापार हो गया जो घर में होता था।

बेटे के मुख में माँ ने दाना डाला है, तो वृद्धावस्था में, जब हम बिस्तर पर पड़े हैं, तो बेटा मेरे मुख में लाकर क्यों नहीं डालता है? होता

है कि नहीं? एक दिन बच्चा बाप की गोदी में लेटता है और अन्त समय में बाप बेटे की गोदी में लेटता है। देखा है मैंने, बड़ा दर्दनाक दृश्य मैंने आँखों से देखा है। कल्पना नहीं कर रही हूँ सच्ची बात सुना रही हूँ आपको। तो अगर मानव सेवा संघ ज्वाइन किया आपने और अपने उद्धार के लिए अपने कल्याण के लिए, समाज की सेवा में आहुति डालने के लिए एक कौड़ी चाहे एक करोड़ डाला, तो जब आपको याद आता है तो चित्त-शुद्धि तो नहीं होगी भाई।

तो चित्त शुद्ध करने के लिए यहाँ हाथ डालना है। और मानव सेवा संघ कभी आप पर दबाब नहीं डालेगा कि जरूर करो। हम काहे को कहें। स्वामी जी महाराज कभी-कभी ईश्वरवाद के बारे में आनन्द लेते तो कहते कि हम काहे को कहें तुमको कि बाबा जी हो जाओ। अगर बाबा जी हुए बिना तुम्हारा कल्याण हो जाए तो कर लो हम काहे को कहें? भगवान कोई सस्ता है कि मैं लेकर आपके आगे पेश करता फिरूँ कि हमारे भगवान बड़े अच्छे हैं कि तुम मान लो, तुम मान लो, तुम मान लो हम काहे को कहें भाई। अगर तुमसे न रहा जाए तुम्हारी सौ बार गरज हो तो मानो। मानोगे तो कल्याण हो जाएगा इसमें संदेह नहीं है।

●

प्रवचन 5

पूज्य संत महानुभाव, सत्संग-प्रेमी माताओ, बहनो और भाइयो !

यह विचार-विनिमय का समय है। साधको के कुछ प्रश्न आए हैं। मैं प्रश्न पढ़ती हूँ।

प्रश्न—अहंकृति-रहित, अप्रयत्न, निर्विषय, निःसंकल्प, निर्विचार होकर शांत होते ही तंद्रा, निद्रा, जड़ता और बेखबरी में आबद्ध हो जाता हूँ, तो इस जड़ता में डूब जाने से बचने हेतु कोई उपाय बताने की कृपा कीजिए? मेरे साथ यह कठिनाई वर्षों से चल रही है। मौन होते ही हर बार ऐसा ही होता है। कोई भी प्रगति होती नहीं दिखती, तो कैसे आगे बढ़ूँ या क्या करूँ?

उत्तर—इसमें मुझे ऐसा लगता है कि शारीरिक दुर्बलता प्रश्नकर्ता को हैं। मैं जानती हूँ, काफी अस्वस्थ शरीर है, उनका। तो शारीरिक दुर्बलता और जीवन की नीरसता—इन्हीं से जड़ता और निद्रा, आलस्य, तन्द्रा छायी रहती है। यह कारण है। शरीर बहुत ही अस्वस्थ और दुर्बल है और जीवन में रस नहीं है, रस की कमी है, सरसता नहीं है। तो उन्होंने ऊपर जो लिखा है कि अहंकृति-रहित, अप्रयत्न, निर्विषय और निःसंकल्प, निर्विचार। तो ये सब शब्द तो उन्होंने लिखे, लेकिन वस्तुतः अहंकृति-रहित, अप्रयत्न होने पर जीवन में इतनी शांति, इतनी सरसता, इतना अच्छा लगता है कि उस समय तो दुर्बल अथवा सबल, बीमार अथवा स्वस्थ शरीर का भास भी नहीं रहता। जड़ता अथवा शिथिलता कहाँ रहेगी? अहंकृति-रहित होना यह तो बहुत ऊँची बात है। जब सब प्रकार के संकल्पों का त्याग कर दिया जाए, जब की हुई भलाई और उसके फल का त्याग कर दिया जाए और मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए और मुझे अपने लिए इस क्षण में कुछ नहीं करना है इन सब संकल्पों के त्याग के बाद, ममता

और कामना छोड़ने के बाद, जब व्यक्ति अहंकृति-रहित होता है, अप्रयत्न होता है, जिसमें कि शरीर की सहायता की आवश्यकता ही नहीं है, तो उसमें तो इतना रस है, इतना आनन्द है, इतना हल्कापन है कि वहाँ जड़ता और शिथिलता कहाँ पहुँचेगी ? मेरे जानते मेरे भाई का ख्याल जरूर होगा कि वे अंहकृति-रहित हो गए कि वे निर्विचार हो गए कि वे निःसंकल्प हो गए ऐसा उनका ख्याल होगा, लेकिन ऐसा हुआ नहीं है। अगर होता तो उसमें जड़ता, शिथिलता, निद्रा और तन्द्रा हो नहीं सकती है। इसलिए ये जो बातें बतायी गयी, सत्य की स्वीकृति से साधन-तत्त्व की अभिव्यक्ति है। अप्रयत्न हो जाना, निर्विषय हो जाना, निःसंकल्प हो जाना, निर्विचार हो जाना यह सत्संग का फल है।

सत्य को स्वीकार किया और उसके प्रभाव से यह साधन तत्त्व अभिव्यक्त हुआ ऐसा जब होता है तब तन्द्रा, निद्रा, जड़ता नहीं रह सकती है। अब जिन भाई का प्रश्न है उनको मैं जानती हूँ बहुत पहले से। वेदान्त के आधार पर अपने को सँभालने की चेष्टा में वे लगे हैं। स्वामी जी महाराज के पास भी बहुत बैठे हैं और साधन-व्यवहार में, रहन-सहन में काफी सावधानी भी है, फिर भी मेरा यह निवेदन है कि जीवन में सरसता आनी चाहिए। सरसता कैसे आएगी ? तो उनके लिए भगवान ने रास्ता साफ कर दिया है। घर-गृहस्थी के झंझट में अब उनके लिए फँसने की कोई बात है ही नहीं। सब कर्तव्य से निवृत्त हो चुके हैं। सरसता तो आती है, ऊँचे जीवन की लगन से।

मुझे अब अविनाशी जीवन चाहिए, मुझे अब देहातीत जीवन चाहिए, मैं अब निज स्वरूप में स्थित हुए बिना रह नहीं सकता यह लगन लग जाती है तो निंद्रा, तन्द्रा, जड़ता, आलस्य सब खत्म हो जाती हैं। आप कहेगें कि क्या करें ? तो मेरा ऐसा अनुमान है, सच्ची बात तो वे स्वयं ही जान सकेंगे, केवल उनकी मदद करने के लिए मैं कह रही हूँ कि इतने दिन

तक उन्होंने अप्रयत्न होना, निर्विचार होना, निःसंकल्प होना, देहातीत जीवन में स्थित होना, इन बातों पर अध्ययन किया है, विवेचन किया है खूब, लेकिन ये बातें उनके व्यक्तित्व में आयी नहीं है। अब ऐसा करना चाहिए जब शारीरिक स्वास्थ्य ठीक नहीं है, और तरह-तरह की उसमें तकलीफें रहती हैं, तो उनको पहले देह से सम्बन्ध-विच्छेद करने वाली बात ज्ञान के प्रकाश में अपने द्वारा स्वीकार करना चाहिए और हठ पूर्वक शरीर को लेकर बैठने की चेष्टा नहीं करके, कमजोर शरीर जिस पोस्चर में ठीक प्रकार से रहे उस पोस्चर में उसे रख दीजिए।

ईजी चेयर में डाल दीजिए तो उसको सँभालने में आपको ज्यादा कोंशस नहीं रहना पड़ेगा। और फिर उस विवेक के प्रकाश में जिसने आपको प्रत्यक्ष रूप से दिखला दिया। माता के प्रति, पत्नी के प्रति, बहन के प्रति, बहन के बच्चों के प्रति जो अपना-पन माना था उसमें से एक भी सत्य नहीं निकला। सब अपनी आँखों के सामने देखते ही देखते सारा खेल तमाशा खत्म हो गया। तो इस अनुभव का आदर करके निज विवेक के प्रकाश में, मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है, इस सत्य को पहले हृदयंगम करें। सुख का भोग तो शरीर के माध्यम से उनके जीवन में अब कुछ है ही नहीं। तो किसी प्रकार का सुख तो नहीं है, लेकिन सुख की वासना रह गयी हो, बीते हुए, भोगे हुए सुख का प्रभाव रह गया हो तो वह ज्ञान के प्रकाश में कटेगा। नया कुछ भोगते नहीं है, इसलिए नया राग बनेगा नहीं। और विवेक के प्रकाश में इस सत्य को स्वीकार करें कि मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है इसे स्वीकार करें तो शरीर से जब सम्बन्ध टूटेगा और देहादीत जीवन के प्रति लगन बढ़ेगी कि अब तो हम उसके बिना किसी प्रकार से रह ही नहीं सकते। प्रक्रिया सब उनका जाना हुआ है, सब पढ़ा हुआ है, सब मालूम है। फिर तो और कुछ पढ़ना नहीं पड़ेगा

और सचमुच जीवन में ऊँचे लक्ष्य के लिए लगन बढ़ जाएगी तो रस बढ़ जाएगा, सरसता आ जाएगी, तो आलस्य-तन्द्रा और निंद्रा खत्म हो जाएगी। दुर्बल शरीर को कुछ ज्यादा समय लगता हैं नींद के लिए तो उसको देने में संकोच न करें। जितनी समय में अच्छी नींद आकर के कमजोर शरीर की आवश्यकता पूरी हो जाए उतना समय भले निंद्रा में लगा दीजिए। लेकिन उसके बाद आलस्य तन्द्रा नहीं रहनी चाहिए।

जब आँख खुल जाए तो सचेत होकर के, सावधान होकर के मूक सत्संग में स्थित हो जाइए और यदि शारीरिक असमर्थता देखकर, जीवन की असफलता देखकर कहीं सर्वसमर्थ की शरणागति पसंद आ जाए तो समर्पण योग में रहिए। रास्ता तो खुला हुआ है सब। कोई जरूरी नहीं है कि जिस रास्ते से चल करके के अपने को आगे बढ़ने में नहीं लग रहा है कि हम आगे बढ़ रहे हैं तो उसके साथ और कुछ स्वीकार नहीं करें, ऐसी कोई बात नहीं है। और ऐसा भी संकोच नहीं करना चाहिए कि अरे भाई इतने समय से तो मैं वेदान्ती था अब ईश्वर-विश्वासी कैसे बनूँ? यदि जीवन की आवश्यकता मालूम होती है, तो बन जाओं। वेदान्त का प्रकाश जिसका है, शरण्य बन करके अपनी कृपा से वह ही सँभालेगा। विवेकी जन को वह ज्ञान का प्रकाश देकर के सँभालता है, विश्वासी जन को, कृपा की आवश्यकता अनुभव करने वालों को वह अपनी कृपा बनकर सँभालता है। पर है तो वही तो संकोच किस बात का है। जैसा अच्छा लगे वैसा कर डालो।

प्रश्न—उन्हीं भाई का प्रश्न है। जागने पर जो बिना प्रयत्न के स्वत: ही सत्य सम्बन्धी चिंतन या प्रभु प्रार्थना होने लगती है, सो उसे निरर्थक चिंतन या विचार का उदय समझा जाए अथवा उसे व्यर्थ चिंतन या मस्तिष्क का व्यायाम मात्र समझा जाए?

उत्तर—सच्चे प्रश्न हैं साधक का प्रश्न है, बनावटी बातें नहीं है। बहुत ठीक-ठीक लिखा है उन्होंने, जैसा वे फील कर रहे हैं। तो इसके सम्बन्ध में स्वामी जी महाराज ने जो बातें हमें सुझायी हैं वे ये हैं कि ईश्वर से आत्मीय सम्बन्ध स्वीकार किये बिना, जो अपने पर जोर डाल करके चिंतन किया जाता है, तो ईश्वर-चिंतन अच्छा है, ईश्वर को याद करना ऊँची बात है, बड़ी बढ़िया बात है, ऐसा मान करके बिना सम्बन्ध के बिना प्रियता के जो जोर डाल करके नित्य नियम के रूप में किया जाता है, तो महाराज जी ने एक जगह पर कहा टेपरिकार्डिंग किया हुआ है—दादा हनुमंत सिंह जी को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि हनुमंत सिंह जी, सुनो देखो ऐसा होता है। क्या होता है कि अभ्यास करते-करते जान बूझकर सचेत होकर चिंतन करते-करते उस चिंतन में आसक्ति हो जाती है, भगवत्-अनुराग पैदा नहीं होता है। तब क्या होता है? कि उसको छोड़ने का जी नहीं चाहता। अगर कह दिया जाए भाई फायदा नहीं हुआ तो छोड़ दो, साधक उसको छोड़ नहीं सकता है। क्यों? क्योंकि उसे लगता है कि यह तो अच्छी साधना है, इतने दिन से करता आया हूँ। इसलिए छोड़ूँ कैसे? तो करते-करते करने वाली साधना में अपनी आसक्ति पैदा हो जाती है, उसको किये बिना रहा नहीं जाता है परन्तु उसके द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति नहीं होती है। तो इसको न मैं व्यर्थ चिंतन कहूँगी, न मैं सार्थक चिंतन कहूँगी। स्वामी जी महाराज ने जिन शब्दों में उत्तर दिया वह उत्तर मैंने आपके सामने रख दिया। और आप ही का अनुभव है कि मेरे किये बिना होता रहता है। अगर यह सार्थक चिंतन होता तो इसका भी प्रभाव जीवन पर होकर के आपको तन्द्रा, निंद्रा से ऊपर उठ जाना चाहिए था। अगर यह विचार का उदय होता, विचार मार्ग के साधकों के लिए बताया गया कि निःसंकल्प होकर, अहंकृति रहित होकर अप्रयत्न हो जाने पर उनमें स्वतः उच्च विचार का उदय होता है, वह विचार उनको सत् असत् के

विभाजन में समर्थ बना देता है, जो उनको शरीरों से तादात्म्य तोड़ने में सफल बना देता है, तो आपके जानते जो कुछ आपमें होने लगता है, वह विचार का उदय होता तो समस्या हल हो गयी होती।

ठीक है न तो समस्या तो हल हुई नहीं भाई आप ही कह रहे हैं कि तन्द्रा-निद्रा से मैं मुक्त नहीं हो सका तो उस अलौकिक विवेक के प्रकाश में विचार का उदय हो जाए जो कि 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' का आपको बिल्कुल दर्शन करा दे अनुभव करा दे उसके बाद तन्द्रा निद्रा का प्रश्न रहेगा? नहीं रहेगा। और भाई स्वयं ही कहते हैं कि तन्द्रा, निद्रा आलस्य के रोग से मैं मुक्त नहीं हो सका। तो उनको अपने से अर्थ ले लेना चाहिए कि मेरे भीतर जो कुछ हो रहा है वह न सार्थक चिन्तन है न विचार का उदय है।

तब आप कहेगें कि है क्या? मैं कहूँगी कि सारी जिन्दगी जो आपने अध्ययन किया है, उसका फल है। ऐसा होता है। एक माँ एक दिन मुझसे बात करने आयी तो बैठ करके बातचीत कर रही थी। तो बड़ी तकलीफ में बाहरी दृष्टि से शारीरिक कष्ट में हैं, सहायता करने के लिए कोई नहीं है। एक लड़की को अपने साथ रखती हैं वह भी असमर्थ हो जाने पर सेवा करने वाले की मौज ही जाती है। हमारी इच्छा होगी तो तुम्हारी मद्द करेगें नहीं तो नहीं करेगें अपनी मौज में आ जाते हैं, असमर्थ आदमी कुछ कर ही नहीं सकता। और सेवा करने वाले तो अपनी खुशी पर करेगें, नहीं करेंगे। यह सब बताती जा रही थीं, ऐसे हुआ है, वैसे हुआ है, यह दशा है, वह दशा है और यह सब क्या है? यह सब जहाँ हो रहा है वहाँ हो रहा है। यह सब कहाँ आ गया बीच में, तो यह अध्ययन का फल है। यह जो पढ़ते-पढ़ते, पढ़ते-पढ़ते सब शब्दावलियाँ याद हो गयी। अब देहातीत जीवन के क्या लक्षण हैं वे सब याद हो गए तो उसका फल है कि इतना अंधकार छाया हुआ है। अधिकार-लालसा नहीं मिटी, क्रोध

आ रहा है सेवा करने वाले क्यों नहीं सही सेवा कर रहे हैं? इसके लिए क्षोभ हो रहा है, सब हो रहा है और रटी रटाई बात दुहरा रहे हैं। यह सब जहाँ हो रहा है, हो रहा है। जहाँ हो रहा है वहाँ हो रहा है तो आपके आँसू क्यों आ रहे हैं? है न? विचारने की बात है।

इसलिए मैं अपने भाई को कह रही हूँ कि आप इसको विचार का उदय तो मान ही नहीं सकते हैं। मेरे कहने से नहीं, अपनी दशा को ही देख करके आपको अर्थ लगा लेना चाहिए कि क्या हो रहा है कि वह किये हुए अभ्यास के बल पर स्नायु मण्डल में पहले से याद की हुई चीजों की पुनरावृत्ति हो रही है।

एक माँ इलाहाबाद में कुम्भ के अवसर पर स्वामी जी महाराज से मिली, तो काफी बड़ी उम्र भी थी और स्वामी जी महाराज उस समय उतने उम्र के नहीं थे। तो बच्चे की तरह स्वामी जी महाराज की पीठ के पास बैठ करके खूब पीठ सहलावे, सिर पर हाथ फेरे, खूब दुलार करे जैसे स्वामी जी बच्चा है, वह माँ है, ऐसा करे और रोवे खूब कि महाराज, अब तो मैं आपको नहीं छोड़ सकती हूँ, अब आप तो मुझे पार लगाइए।

क्या बात है माँ? मैंने इतने दिन ऐसा किया, इतने दिन ऐसा किया। उसने बड़े जोर से जप किया था, अब उस समय उसकी दशा ऐसी हो गयी थी कि वह कहे कि मैं चाहती हूँ कि अब यह छूट जाए, मैं सो जाऊँ। रस आया नहीं, जीवन से अभिन्नता हुई नहीं, शरीर का तादात्म्य टूटा नहीं। अब स्नायुमण्डल में क्रियात्मक वेग से इतना वह सब भर गया कि अब वह सोना चाहती है तो उसको नींद नहीं आती, अब भी उन बातों की पुनरावृत्ति होती रहती है, होती रहती है, होती रहती है। तो जीवन नहीं मिला तो एक मानसिक रोग तो गया, वे कहती हैं कि मैं चाहती हूँ कि जप करना छोड़ करके कुछ देर के लिए सो जाऊँ तो यह बन्द ही नहीं होता है। मस्तिष्क में, स्नायुमण्डल में, ऐसोसियेशन ऑफ ऐसोसियेशन

थॉट वेग से इस प्रकार से गतिशील हो गए कि अब उसके कन्ट्रोल में ही नहीं है। जैसे मोटर चलाने वाले लोग चलाते हैं, चलाते-चलाते उसमें कोई भी मशीन कमजोर हो जाए तो ब्रेक ड्राइवर के हाथ में ही नहीं आता है, तो चाहता है उसे कन्ट्रोल कर लूँ, कन्ट्रोल करने पर कन्ट्रोल होता ही नहीं है।

यह दशा हो जाती है, स्नायु मण्डल में। ज्यादा जोर डाल करके उसमें भर दो, तो फिर उसके बाद तुम उस क्रिया को बन्द करना चाहो तो बन्द नहीं होता, वह होती रहेगी, होती रहेगी, तो नींद ही नहीं आ सकती है, सो भी नहीं सकती है। जीवन भी नहीं मिला, सत्य की अभिव्यक्ति भी नहीं हुई और मानसिक रोग पैदा हो गया। ऐसा होता है। इसलिए महाराज जी ने सभी साधकों को खूब याद दिलाया कि भैया जिस भूमिका में तुम्हारी साधना सजीव बनेगी, उसकी तैयारी पहले करो।

क्या करो ? तो पहले अपनी इस भूल को मिटाओ। अगर देहातीत जीवन की आवश्यकता आप अनुभव करते हैं तो मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं हैं, इस सत्य को हृदयंगम करो। इस सत्य की स्वीकृति से जब देह के प्रति आपकी भीतर जो महिमा बैठी है, वह मिटेगी तब आप शरीर से ऊपर उठने के अधिकारी बन सकेंगे। और अभ्यास करते-करते उसका फल क्या होगा कि उसमें आसक्ति हो जाती है, उसको छोड़ा नहीं जाता, परन्तु उसके द्वारा जीवन में रस पैदा नहीं होता तो नींद से जगते ही मस्तिष्क में ये क्रियाएँ होने लगती हैं। तो इन क्रियाओं को विचार का उदय नहीं समझना चाहिए। नहीं तो विचार का उदय महापुरुषों के जीवन में हुआ है समय-समय पर। रमण महर्षि के जीवन की एक छोटी सी घटना उनकी जीवनी में पढ़ा था मैंने। 11 वर्ष की उम्र में घर छोड़ने से पहले चिंतन में तो रहते ही थे विचार इनका बहुत था शुरू से ही। तो एक दिन इनके भाई ने चिट्ठी डालने के लिए दिया कि पोस्टकार्ड खरीदने

के लिए दिया कि ले आओ पोस्ट आफिस से और ये अपनी मस्ती में ही थे, इनके ध्यान में ही नहीं रहा। बिना खरीदे घर लौट कर आ गए। बड़े भाई ने माँगा—लाओ। तो लाए नहीं थे कहा भूल गए हैं। बड़े भाई ने बहुत डाँटा और कहा कि क्या करेगा इतना बड़ा लड़का 11, 12 साल का। 13 साल के थे शायद। तुम पोस्ट आफिस से स्टेंप खरीद के नहीं ला सकते। मर जा तू, ऐसे करके बड़े भाई ने डाँट दिया।

चले गए एकांत में, कोठरी बन्द कर ली, लेट गए और सोचने लगे कि ठीक तो है भाई साहब ने ठीक ही तो कहा है। क्या है इसमें? क्या है यह? तो यह क्या है? मैं क्या हूँ? इतने जोर से उनके भीतर यह जागृति हुई और लेटे-लेटे मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर को मैंने छोड़ दिया है, शरीर की मृत्यु है, इसका नाश है, मैं इससे अलग हूँ। विचार का उदय हुआ, शरीर नाशवान है और मैं अविनाशी हूँ उनको दर्शन हो गया उसी उम्र में और वहाँ से उठकर चल दिए। ठीक है मैं किसी काम का नहीं हूँ मैं जाता हूँ। विचार का उदय तो एक ऐसा अमूल्य परिवर्तन वाली चीज़ है कि उसके बाद तो फिर कभी भ्रम हो ही नहीं सकता कि शरीर और संसार से भी कभी कोई त्रिकाल में मेरा सम्बन्ध था, अथवा है, अथवा होगा।

बहुत ऊँची चीज़ है, योग की साधना में। चाहे समर्पण योग हो, चाहे अन्य प्रकार का योग हो, योग की साधना में एक पोइंट ऐसा आता है, जहाँ कि अपने लिए कुछ भी करणीय शेष नहीं रहता। तो शरीर से सम्बन्ध रहा नहीं, अपने को कुछ चाहिए नहीं, अपना कुछ है नहीं, तो अपने को कुछ नहीं चाहिए, और अपने को कुछ करना नहीं है। तो ये बातें साधक अपने द्वारा न स्वीकार करता है। और उसके भीतर से शांति की अभिव्यक्ति होती है तो उसमें यह विचार उदित होता है और तत्काल ही तीनों शरीरों से तादात्म्य ऐसा टूटता है, ऐसा टूटता है कि स्वामी जी के मुख से मैंने

सुना था कि फूल के तोड़ने में देर लगती है और उस सत्य के अभिव्यक्त होने में देर नहीं लगती है। पलक के गिराने और उठाने में काल लगता है, और इस विचार के उदित होने में काल नहीं लगता। सुना था मैंने। और कई स्तर पर, कई अवसरों पर हमने ऐसा देखा भी। कब सारा संसार, शरीर सहित लुप्त हो गया सो पता ही नहीं चलता है। कुछ नहीं रहता है, टाइम एण्ड स्पेस। काल और स्थान का कन्सेप्शन तो ऐसा होता है जैसा कि कभी था ही नहीं। यह तो बहुत ऊँची चीज़ है, बहुत बढ़िया बात है, और बहुत सच्ची बात है। विचार मार्ग के साधकों के लिए पुरुषार्थ की अन्तिम सीमा है।

उसके बाद कुछ करना नहीं होता। अपने आप ही सब खत्म हो जाता है। तो इस पर आप की दृष्टि रहे, उसके लिए आप सही प्रकार से प्रोसीड करे तो आ जाएगा जीवन में, क्यों नहीं आएगा? 50% आपका काम तो प्रकृति ने कर दिया है, और आधा ही हिस्सा बाकी है, हो जाएगा।

●

प्रवचन 6

प्रश्न—जब सत्संग या प्रार्थना में रहते हैं तो ऐसा लगता है कि चित्त निर्मल हो गया है, अब अपने से व्यवहार करते समय कोई बुराई न होगी, परन्तु जब व्यवहार में जाते हैं तब कोई न कोई बुराई हो जाती है। उससे बहुत पश्चाताप भी होता है, परन्तु यह सत्संग, पश्चाताप और प्रार्थना भी बुराई-रहित जीवन नहीं दे सके। पूर्णतः बुराई-रहित जीवन के लिए और क्या साधन करना चाहिए?

उत्तर—इसमें एक बड़ा रहस्य यह है कि सत्संग, पश्चाताप और प्रार्थना मनुष्य को बुराई-रहित न बना सके, यह बात बिल्कुल गलत है, भ्रमात्मक है। ऐसा नहीं होता है। ऐसा आपको लगता होगा, प्रश्नकर्त्ता भाई को ऐसा लगता होगा लेकिन उसके भीतर रहस्य क्या है? कि जिस बुराई को आप विचार से छोड़ना चाहते हैं उस बुराई में कहीं न कहीं कोई तात्कालिक सुख आपका फँसा होगा जरूर। बुराई को बुराई जान कर उसका त्याग कर देना, यह तो विचारक जन का सहज स्वभाव होता है। लेकिन दो हिस्से हो गए व्यक्तित्व के। विचार के आधार पर आप बुराई छोड़ना चाहते हैं, लेकिन जीवन में उस बुराई-जनित सुख की आसक्ति शेष रह गयी है तो दोहरा कर आ जाती है। दूसरी बात क्या है? कि आपके प्रयास से जीवन की कुछ बुराइयाँ तो चली गयीं, अब छोटी-मोटी जो रह गयीं हैं, उसको आप सहन कर सकते हैं इसलिए वे दोहरा कर आ रही है। सहन नहीं कर सकते होते तो नहीं आती। आप कहते हैं कि सत्संग से भी यह काम नहीं हुआ, पश्चाताप से भी यह काम नहीं हुआ और प्रार्थना से भी यह काम नहीं हुआ। तो नहीं हुआ यह कहना तो आपका मैं मानती हूँ लेकिन यह मैं नहीं मानूँगी कि सत्संग, पश्चाताप और प्रार्थना फेल हो गए ऐसा मैं नहीं मानूँगी। क्यों नहीं मानूँगी मुझे मालूम है, मानव जीवन का यह मंगलमय विधान है कि जिस बात को आप अपने में नहीं रखना चाहेंगे वह कभी ठहर नहीं सकता।

तो आपके केस में क्या हुआ होगा? तो आप के केस में या तो यह हुआ है कि पश्चाताप भी सजीव नहीं है, प्रार्थना भी सजीव नहीं है। आपने सुन लिया है, सुनने के आधार पर आप ऐसा कर रहे होंगे लेकिन इसमें सजीवता नहीं होगी, तो दोनों बातें खत्म करिए। किसी भी बुराई से जो तात्कालिक सुख मिलता है, उसको आप निकालिये जीवन में से। बुरा परिणाम पीछे आता है और सुखद परिणाम पहले आता है। जैसे किसी रोगी आदमी का लिवर खराब हो गया हो और उसको तली, भुनी हुई चीज़ें खाने के लिए मना किया गया हो, तो खाते समय स्वाद का सुख पहले आ गया और डायरिया का दु:ख पीछे आया।

बुराई जीवन में ठहरती है इसलिए कि बुराई का आदमी तात्कालिक सुख पसंद करता है, कालान्तर में जो दु:ख आएगा उस पर दृष्टि नहीं जाती है अन्यथा बुराई ठहर नहीं सकती। तो एक तो मेरे भाई को यह उपाय करना चाहिए कि उसके तात्कालिक सुख को मत देखो, कालान्तर में आने वाले घोर अंधकार और दु:ख को देखो। दूसरी बात यह है कि पश्चाताप ऐसे जान-बूझ कर किया जाता हो सो तो सम्भव नहीं है। अगर निर्मल जीवन की आवश्यकता है, तो अपनी बुराई को देख करके ही हृदय में बड़ी गहरी वेदना पैदा हो जानी चाहिए। और हृदय में गहरी वेदना ही आस्तिक प्राणी की प्रार्थना है। जिसकी आवश्यकता आप अनुभव करते हैं, उसी का नाम प्रार्थना है। तो आप शब्दों में प्रार्थना कर रहे होंगें, सचेत होकर सुना रहे होंगे। हृदय में गहरी पीड़ा पैदा नहीं हुई होगी।

अनेक बार मैंने सुना है अनेक बार आपने भी सुना होगा बहुत से उदाहरण हम लोगों को मालूम हैं। इसी वृन्दावन की बात है, कोई एक महिला कमला जी उनका नाम था, गलत रास्ते पर थी तो किसी खास तिथि पर, एकादशी के दिन कि भैया दूज के दिन कि अक्षयतृतीया के दिन किसी खास तिथि पर मदन मोहन जी के मन्दिर में जल चढ़ाने जा रहीं

थीं। जैसे ही उन्होंने प्रवेश करना चाहा, पंडा ने खूब जोर से उनको डाँट दिया, कंलकिनी, पापिनी आयी है मन्दिर में भगवान को जल चढ़ाने के लिए, निकल जा तू मन्दिर में घुसने के लायक नहीं है। निकल गयी, पीछे चली गयी, मन्दिर के पीछे परिक्रमा में जहाँ पर प्रणाम किया जाता है, पीठ की तरफ। वहाँ जा करके उन्होंने जल चढ़ाया और केवल पात्र का जल ही नहीं चढ़ाया, आँसुओं का जल भी चढ़ाया। मदन मोहन जी आज मेरा जीवन ऐसा हो गया कि हम मन्दिर में आपको जल अर्पित नहीं कर सकते। कह करके जल चढ़ा के आँसू चढ़ा के चली गयी। घर पहुँची, मन्दिर से घर जाते-जाते वृत्ति उनकी पूरी बदल गयी। जिस पुरुष के साथ रहती थी उनसे जाकर के उन्होंने कहा कि देखिए जी अब आज से मेरा आपका कोई सम्बन्ध नहीं रहा। जप करना पड़ा, सम्बन्ध तोड़नें का जाप करना पड़ा? नहीं! हृदय में ग्लानि हुई कि अच्छा! मेरा जीवन इतना पतित हो गया, इतना अधम हो गया कि मदन मोहन जी को मैं जल चढ़ाने के लायक नहीं रही। इस पीड़ा ने उनके विवेक को जगा दिया, उनकी आसक्ति को तोड़ दिया और उस पराये पुरुष के साथ, जिसके साथ रह रहीं थी अपना घर छोड़ के, उसको जाकर उन्होंने कहा कि देखिए जी! आज से आपका मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। अब मैं इस मकान में नहीं रहूँगी, कह करके चली गयी। दूसरी जगह जाकर रहने लगी। प्रतिदिन जमुना जी में जाकर के स्नान करना, लुटिया में जल लेना और मन्दिर के पीछे मदन मोहन जी की याद करके पीछे ही जल चढ़ाना। सामने अब जाती ही नहीं थी। स्वामी जी महाराज ने यह कथा सुनायी थी। एक साल बीत गया। हृदय के पश्चाताप ने, की हुई भूल को पुनः न दोहराने के व्रत ने और मदन मोहन जी की शरणागति, उनकी महिमा, उनकी याद करना, उनका सहारा माँगना, यह सब मिलकर के उसके हृदय को इतना निर्मल बना दिया। स्वामी जी कहते थे कि ऐसा लग रहा था कि एक साल कमला जी ने

मन्दिर में प्रवेश नहीं किया और पीछे-पीछे खड़े होकर जल चढ़ाती रहीं मन्दिर की पीठ पर, तो उनके हृदय की निर्मलता उनका भाव, उनकी हीनता उनकी शरणागति यह सब मिल करके मदन मोहन जी स्वयं ही, उनसे मिलने के लिए व्याकुल हो गए। उसी तिथि को उसी व्रत के दिन एकदम धड़धड़ा कर मन्दिर में पहुँची और जो उन्होंने समर्पण भाव से प्रणाम किया तो मदन मोहन जी में उनका प्राण उसी जगह लय हो गया।

तो एक साल पहले जिसको कंलकिनी कहकर निकाल दिया था, एक साल के भीतर ही, वह सब खत्म हो गया। और जब उन्होंने प्रणाम किया मदन मोहन जी को हृदय खोलकर जब उनसे मिलने गयी तो मदन मोहन जी ने उनको अपने में लय कर लिया। तो जय जयकार होने लगा, कमला जी की भक्ति का बखान होने लगा और बड़ी धूमधाम से उनकी अंतेष्टि कर दी गयी। तो मैं इस बात को नहीं मानती हूँ, कि पश्चाताप से हृदय की शुद्धि नहीं होती है, प्रार्थना से हृदय की शुद्धि नहीं होती है कि सत्संग से मनुष्य के जीवन का अंधकार नहीं मिटता है, मैं ऐसा नहीं मानती हूँ। और जो भी भाई जिन्होंने ये प्रश्न लिखा है, उनके भीतर निराशा नहीं आनी चाहिए, उनको ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि सत्संग, पश्चाताप और प्रार्थना से काम नहीं चला। उनको ऐसा सोचना चाहिए कि जानते, अनजानते, कहीं न कहीं मैंने बुराई को पसंद किया होगा इसलिए बुराई रह गयी है। और कहीं न कहीं मेरी प्रार्थना में और पश्चाताप में कहीं न कहीं निर्जीवता रही होगी, विश्वास कम रहा होगा इसलिए काम नहीं बन रहा है। तो आगे से उनको क्या करना चाहिए? कि बुराई का जो तत्काल एक सुख भास होता है, उसका त्याग करना चाहिए। बुराई को नापसंद करना चाहिए पूरी तरह से और प्रार्थना से, पश्चाताप से और सत्संग से कभी हटना नहीं चाहिए। जहाँ पर आज हैं, वहाँ तक तो डटे रहें और उसके आगे बढ़ने की चेष्टा में लगे रहें। उनकी जरूरत बढ़ती जाएगी, सामर्थ्य बढ़ जाएगी और जल्दी से जल्दी उनका काम शुरू हो जाएगा।

प्रश्न—हर क्रिया के पीछे पवित्र भाव, भाव के पीछे ज्ञान रहना चाहिए। इसमें पहले भाग को समझ लगती है किन्तु दूसरे भाग को समझ नहीं लगती है।

उत्तर—अच्छा खैर यह तो अपने समझ की बात है लेकिन प्रवृत्ति में भाव की पवित्रता और ज्ञान का प्रकाश हमेशा रहना ही चाहिए। ज्ञान के प्रकाश का क्या फल होगा ? ज्ञान के प्रकाश का फल यह होगा कि जिस किसी साधक को अविनाशी जीवन चाहिए, वह किए हुए कर्म के फल की आशा नहीं रखेगा। फल की आशा छोड़ना यह ज्ञान के प्रकाश का परिणाम है। क्यों ? क्योंकि कर्म होता है, कर्म की उत्पत्ति होती है और कर्म का अन्त होता है। ठीक है न ? सत्संग का कार्यक्रम हम लोगों ने शुरू किया है, बोलने का आरम्भ हुआ है, सुनने का आरम्भ हुआ है, तो बोलने और सुनने का अन्त भी होगा। तो जिसका आरम्भ होता है, जिसका अन्त होता है उसका फल भी बनने और मिटने वाला होगा, क्रिया का फल जो बनेगा।

इसलिए जो विवेकी जन होते हैं वे सही प्रवृत्ति में भाग लेते हैं, लेकिन प्रवृत्ति का फल अपने लिए नहीं चाहते हैं। क्योंकि उसका फल भी नाशवान होता है। ज्ञान का प्रकाश क्या करेगा कि जब हम कर्म-क्षेत्र में हाथ डालेंगे, सर्वहितकारी काम करेंगे तो इस सावधानी के साथ करेंगे कि इस किए हुए कर्म का कोई फल मुझको नहीं चाहिए, रिगार्ड मुझको नहीं चाहिए, अभिमान अपने में नहीं रखेंगे। किस उददेश्य कर्म करेंगे ? कि करने के राग की निवृत्ति हो जाएगी तो यह तो ज्ञान का फल हुआ। भाव क्या है ? कि कर्म में भाव की पवित्रता का बड़ा महत्त्व है । क्या महत्त्व है कि भाई, जो भी कुछ कर्म हम करने जा रहे हैं उस कर्म के फल से किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं होना चाहिए, किसी का अहित नहीं होना चाहिए। तो हितकारी हम कितना बनेंगे वह तो परमात्मा के मंगलमय

विधान से बनेगा। लेकिन हम अपनी ओर से, मन से, वचन से, भाव से, कर्म से, किसी को क्षति नहीं पहुँचाएँगे इस व्रत को धारण करना भाव को पवित्र बना देता है ।

तो होता क्या है? अपने सुख की धुन में लगा हुआ व्यक्ति दूसरों की तकलीफ का ध्यान नहीं रखता। अपने स्वार्थ से प्रेरित व्यक्ति दूसरों को क्षति पहुँचा कर, दुःख देकर भी सुख लेना पसंद करता है, इसलिए वह थक जाता है । भाव की पवित्रता का अर्थ क्या है? दुनिया की भलाई कर पाओगे कि नहीं वह तो भले छोड़ दो लेकिन किसी भी प्रकार से, मेरे किसी भी कर्म से किसी का अहित नहीं होना चाहिए। तो इस सत्य को स्वीकार करने से कर्म में भाव पवित्र हो जाता है। अब मेरे भाई पूछ रहे हैं कि भाव की पवित्रता तो समझ में आती है और ज्ञान वाली बात समझ में नहीं आती। पहले और पीछे का प्रश्न नहीं है। समझ में आने न आने की बात नहीं है, आप जब काम करने जाते हैं तो बहुत ही स्पष्ट है कि जब दूसरा कोई मेरे साथ अहितकर कर्म करता है तो मुझे बुरा लगता है, तो हमको दूसरे के साथ अहितकर कर्म नहीं करना चाहिए।

और यहाँ तक बात है, बड़ी अच्छी बात है। प्रश्नकर्त्ता ने जो प्रश्न किया है, उसमें से एक उदाहरण मुझे याद आ गया। स्वामी जी महाराज से एक बार ऐसे ही मेरी बातचीत हो रही थीं, भाव की पवित्रता और विधि की शुद्धता, ठीक विधि से काम करना, पवित्र भाव से काम करना तो महाराज जी ने बताया। मैंने अपना कोई उदाहरण दिया, हमने कहा कि महाराज इस काम में ऐसा-ऐसा हो रहा है, पूरा पक्का नहीं उतर रहा है तो मुझे करना चाहिए कि नहीं करना चाहिए। तो स्वामी जी ने यह नहीं कहा कि तुमको करना चाहिए कि नहीं करना चाहिए। उससे ऊपर की बात बोल गए, उन्होंने कहा कि देखो साधक होकर के अगर कर्म करने में इतनी सावधानी नहीं रखी जाएगी। ठीक विधि से पूरा करो, पवित्र भाव से पूरा

करो और विवेक पूर्वक पूरा करो। तो ज्ञान का हिस्सा उसमें से हटा दो तब भी और भाव की पवित्रता का हिस्सा हटा दो तब भी, या विधि की शुद्धता हटा दो तब भी काम तो हो जाएगा, उल्टा, सीधा जैसा तैसा लेकिन तुमको सबसे बड़ा घाटा यह लगेगा कि करने का राग नहीं मिटेगा।

यह है उसका रहस्य। अगर जो काम करना है, उसको पवित्र भाव से नहीं करोगे, ज्ञानपूर्वक नहीं करोगे और ठीक विधि से नहीं करोगे, हमारी विधि गलत हो रही थी, तो विधि पर हमने ध्यान दिया था, हमने महाराज जी से कहा इसको जैसा होना चाहिए वैसे हमारे द्वारा नहीं हो रहा है तो करें कि नहीं करें? तो यह नहीं कहा कि मत करो और यह नहीं कहा कि करो, यह कहने लगे देवकी जी, बहुत बड़ा घाटा यह लगेगा कि इसमें से कोई भी हिस्सा छोड़ दिया तुमने, उन पर ध्यान नहीं दिया तुमने तो करते जाओ, करते जाओ, करने का राग नहीं मिटेगा, तो बहुत बड़ा घाटा है, राग नहीं मिटेगा तो क्या होगा? राग नहीं मिटेगा तो बारम्बार शरीर धारण करना पड़ेगा। ऐसा है तो आगे पीछे की बात नहीं है और किसको पहले लें किसको पीछे लें ऐसा कोई प्रश्न नहीं है। कर्म के सम्बन्ध में कर्म विज्ञान के आधार पर तीनों की बातें अच्छी तरह से निभानी पड़ेंगी, तभी राग की निवृत्ति होगी, तभी आप शान्त हो सकेंगे, तभी आप देहातीत जीवन में प्रवेश पा सकेंगे।

प्रश्न—आत्म-विकास अथवा आत्मज्ञान में शरीर की स्वस्थता एवं निरोगता का महत्त्व निर्विवाद है। मानव सेवा संघ शरीर-शुद्धि चित्त-शुद्धि एवं निरोगता के लिए क्या मार्ग सुझाता है? कृपया प्रकाश डालें।

उत्तर—इसलिए कि ये सब औजार जो अपने को मिले हैं संसार में रहने के लिए। शरीर मिला है, मन मिला है, चित्त मिला है, बुद्धि मिली है, ये सब साथी जो मिलें है प्राकृतिक शक्तियों के अंश के रूप में इनको इनकी स्वाभाविकता में रहने देना है।

इनकी स्वाभाविकता में रहने देना है, मन को भी, चित्त को भी, बुद्धि को भी शरीर को भी। सब शरीर ही है, सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर सब उनके अंग है अलग-अलग। तो इनको स्वस्थ रखना अपना कर्तव्य है, इनको स्वाभाविक रहने देने अपना कर्तव्य है और निरोग शरीर से सत्य पकड़ा जाएगा ऐसा सोचना भूल है। शरीर नाशवान है। नाशवान शरीर से अविनाशी जीवन नहीं मिलता है। नाशवान शरीर के माध्यम से अविनाशी तक पहुँचा नहीं जाता है। शरीर को स्वस्थ रखना है इसलिए क्योंकि यह एक प्राकृतिक यन्त्र है। यह ठीक रहेगा तो संसार के काम आएगा। मन, चित्त को ठीक रखना है, शुद्ध रखना है इसलिए क्योंकि ये प्राकृतिक शक्तियाँ है ये ठीक रहेंगी तो सेवा में सहायक होंगी। अपने को तो सबसे असंग होना है स्थूल शरीर से भी, सूक्ष्म शरीर से भी, कारण शरीर से भी। सबसे असंग होने के बाद ही अविनाशी जीवन से अभिन्नता होती है। अविनाशी का अविनाशी योग, अविनाशी का बोध, अविनाशी का प्रेम तीनों शरीरों से सम्बन्ध तोड़ने के बाद ही सम्भव होता है ।

मानव सेवा संघ शरीरों की स्वस्थता, नीरोगता, संयम, सदाचार, हितकर श्रम इस पर खूब जोर डालता है किसलिए? इसलिए कि अगर शरीर के साथ जो करना चाहिए सो नहीं करोगे तो उससे सम्बन्ध तोड़ने में आपको कठिनाई होगी। शरीर स्वस्थ रहता है भोग प्रवृत्ति से कि संयम से? संयम से। तो जो भोग-प्रवृत्ति में लग-लग करके शरीर को रोगी कर देगा, आसक्ति में पराधीनता में लग जाएगा। तो जो आसक्ति में बँधा है, वह शरीर का संग छोड़ सकेगा? नहीं छोड़ सकेगा। तो मानव सेवा संघ में शरीर की सेवा, मन की सेवा, चित्त की सेवा का यह अर्थ है।

प्रश्न—यह कहा जाता है कि जो हमारे मित्र अथवा सम्बन्धी थे जिनका वियोग हो गया, उनकी तो हमें याद आती है परन्तु जो प्रभु मौजूद है, हमारे साथ है, उनकी याद करनी पड़ती है।

उत्तर—इस सम्बन्ध में निवेदन है कि जो हमारे मित्र अथवा सम्बन्धी थे, उनका सम्बन्ध हमारे शरीर, मन, बुद्धि से था, जिस कारण उनकी याद आती रहती है । यह भी भ्रम है। परन्तु प्रभु का सम्बन्ध? आप कहते हैं कि जिनका मैंने सम्बन्ध माना, उनका सम्बन्ध हमारे शरीर, मन, बुद्धि से था इसलिए उनकी याद आती है और इसीलिए सम्बन्ध बना हुआ है । तो आप ऐसा सोचिए कि बहुत घना सम्बन्ध आपने माना था पर मन के प्रतिकूल होने से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। हाथ-पाँव तो बना ही हुआ है, शरीर, आँख, नाक, कान तो बना ही हुआ है लेकिन अब उस व्यक्ति की ओर देखना भी आप पसंद नहीं करते हैं, अलग-अलग रहना पसंद करते हैं, विलग हो जाना चाहते हैं। शरीरों से सम्बन्ध था तो शरीरों के रहते-रहते अलगाव कैसे हो गया? इसका अर्थ यह है कि सम्बन्ध माना था मैंने और तोड़ा मैंने। इसमें शरीर का सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न—परन्तु प्रभु का सम्बन्ध हमारे साथ कभी नहीं हुआ।

उत्तर—आह! विश्वास-पथ की जड़ ही काट डाली मेरे भाई ने। अरे भैया, तुम्हारा नित्य सम्बन्ध और किसी से कभी हुआ ही नहीं। सम्बन्ध अगर है, तो केवल एक उसी अनन्त तत्त्व से है कि जिसमें से हम सब भाई बहनों को जीवन मिला है। मेन स्प्रिंग ऑफ लाइफ कहते हैं उसको रिजर्वोयर ऑफ लाइफ यह सब छोटा-छोटा यूनिट दिखाई दे रहा है न दृश्य जगत् में विविध रूपों में विविध प्राणी दिखाई दे रहे हैं, अलग-अलग सब। इन सबका कौन-सा मेन स्प्रिंग है? कौन-सा रिजर्वोयर है? कौन सा उद्गम है, किसमें से यह सब निकला है? उसी को न परमात्मा कहा जाता है। तो आपने तो सोर्स से ही कनेक्शन काट दिया। साँस कैसे लेंगे भाई? सत्ता ही नहीं रहेगी, अपना कोई अस्तित्व ही नहीं रहेगा। तो यही भ्रम है कि उससे मेरा सम्बन्ध हुआ नहीं। सच्ची बात यही है कि उससे ही सदा-सदा का सम्बन्ध है, उससे भिन्न और किसी से सम्बन्ध कभी था

नहीं, है नहीं, होगा नहीं और मानते हैं तो मानना मेरी भूल है और इसी भूल का परिणाम है कि हाय-हाय करके तड़प रहे हैं। जो सच्ची बात है उसको उलट दिया, जो झूठी बात है उसको पकड़ लिया। यही तो भ्रम है, इसी को मिटाने के लिए सत्संग है।

प्रभु का सम्बन्ध कभी हमारे साथ टूटा नहीं। स्वामी जी महाराज कहते हैं भैया उससे सम्बन्ध तुम्हारा कभी टूटा नहीं, बड़ा भारी भ्रम है। केवल विश्वास ही विश्वास है, केवल सुना ही हुआ है, केवल सुना ही हुआ है इसलिए उनकी याद करनी पड़ती है। तो जब सम्बन्ध हुआ ही नहीं, है ही नहीं तो आप उसको याद करने का कष्ट काहे को करते हैं? अगर आप ऐसा मानते हैं कि उनसे सम्बन्ध हुआ ही नहीं और यह विश्वास जो मैं कर रहा हूँ दूसरों के मुख से सुन रहा हूँ तो यह सुनी सुनायी बात है। और ऐसा मिथ्या विश्वास है तो फिर उसको याद करने का कष्ट क्यों करते हैं आप? याद करने की जरूरत क्यों अनुभव करते हैं। यह अपने आप में विरोध है न? सम्बन्ध भी न मानो और याद करने की चेष्टा करो। अरे भाई काहे के लिए याद करो? हमारा उससे कोई मतलब ही नहीं है। जब बचपन में मैं भगवान से नाराज रहती थीं तो कोई कहता था कि भगवान बड़े कृपालु हैं, जगत् पिता हैं, तो मैं सुना देती गौड इज नॉट अवर फादर बट क्रूयेल जज और फिर जब कोई समझाता तो मैं कहती होंगे कृपालु जिसके लिए उसके लिए मेरे लिए तो है नहीं, इसलिए हमको कोई मतलब नहीं है। सच्ची बात है जिसके सम्बन्ध को ही आप निराधार मानते हैं, जिसके विश्वास को ही आप निराधार मानते हैं, तो उसको याद करने की जरूरत क्या है भाई छोड़ दो उसको हमारे लिए।

हम उसको याद करेंगे, हम उसको प्यार करेंगे हमें अच्छा लगता है, हमें सजीव लगता हैं। गलत बात। इसलिए आप ऐसा मत सोचिए कि

भगवत-स्मृति जो है वह बिना विश्वास के सजीव हो सकेगी ? नहीं होगी, कभी नहीं होगी। मैं उन भाई को जानती हूँ, अच्छे समझदार और सोचने-विचारने वाले आदमी है। तो उन्होंने ऐसे बहस करने के लिए प्रश्न नहीं किया है उनके दिल में यह तकलीफ है, हो नहीं रहा है उससे, तो मैं उनकी सेवा में यह निवेदन कर रही हूँ कि भाई, आप इस मौलिक भूल को मिटाइए। जड़ में ही यह भूल है कि परमात्मा का सम्बन्ध केवल सुना हुआ है, माना माना हुआ है, है नहीं। सम्बन्ध है और जिस समय हम उसको नहीं मानते हैं, उस समय भी वह सम्बन्ध रहता है। कैसे हो सकता है ? आप बड़े विचारक है तो विचार के आधार पर सोच करके देखिए, तो आपको आप ने स्वयं अपने द्वारा नहीं बनाया और जिस धातु से आप बने हैं वह धातु संसार की किसी फैक्ट्री का प्रोडेक्शन नहीं है। आप विचारक है तो विचार की दृष्टि से सोचिए। कोई उत्पत्ति बिना आधार के होती है ? जी, नहीं होती है। कोई प्रतीति बिना प्रकाशक के होती है ? नहीं होती है। तो मत कहो भगवान उसको लेकिन अपनी उत्पत्ति का आधार तो मानोगे ? तो मानना पड़ेगा न ? तो मैं उत्पत्ति हूँ और मेरा आधार है और मेरा उससे सम्बन्ध नहीं है यह कहते बनेगा ? नहीं बनेगा। तो यह प्रश्न ही गलत है।

एक भाई बड़े दुःखी हो रहे हैं कि स्वामी जी महाराज के विचारों के सम्पर्क में आया, तब से जबरदस्त प्रेरणा उनके विचारों से लेता रहा हूँ किन्तु उनके जीवन-काल में कभी भी उनके समीप में अपने आप को उपस्थित करने की आवश्यकता तथा प्रेरणा उत्पन्न नहीं हुई। क्या कारण है कि उनके जीवन-काल में यह इच्छा नहीं हुई ? और अब उनके शरीर शान्त होने के पश्चात् यह प्रायश्चित हो रहा है कि उनका करुणामय प्यार भरा हाथ अपने शरीर से स्पर्श नहीं कराया गया।

उत्तर—तो कोई बात नहीं है। समय-समय की बात है। पहले आपने आवश्यकता नहीं अनुभव की तो ऐसा नहीं कराया ?लेकिन ऐसा मानिए कि आपने नहीं कराया होगा लेकिन उन्होंने किया है। उन्होंने अपने प्यार का जादू चला दिया जरूर शरीर के रहते-रहते अन्यथा अब आपको उसकी याद नहीं आती। तो अब क्या करना है? कुछ नहीं करना है। आपके भीतर उनके प्यार-भरे स्पर्श की आवश्यकता अनुभव होती है तो उनके लिए यह बात कठिन नहीं है। और मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि जब जिस साधक को ऐसी आवश्यकता पड़ती है तो उनके प्यार के स्पर्श का अनुभव होता है। इसलिए आप मत सोचिए। संत अमर होते हैं, उनका नाश नहीं होता, उनके सत्य का नाश नहीं होता, उनके प्रेम का नाश नहीं होता और जिस साधक को जिस समय जैसी आवश्यकता रहती है वे उसको देते हैं। इसलिए आप पछिताइए मत। अब भी आपको उनके प्यार की आवश्यकता है, तो जिस समय यह आवश्यकता तीव्र हो जाएगी आप जहाँ है वही बैठे-बैठे उनके प्यार-भरे स्पर्श का अनुभव कर सकेंगे, आनंदित हो सकेंगे, लाभ उठा सकेंगे।

●

प्रवचन 7

मानव सेवा संघ संस्था के आजीवन सदस्यों और स्थायी साधकों की सेवा में कुछ निवेदन करना है। साधन-पथ में आप दृढ़ बने रहें, आगे बढ़ सकें इस साधन रूप स्वीकृति को अपने जीवन में सजीव बना सकें. इस सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें मुझे आप भाई-बहनों के सामने निवेदन करनी है। जिज्ञासु भाई-बहन पूछते रहते हैं, उत्तर देना जरूरी है। स्वामी जी महाराज के शब्दों में ही कुछ बातें निवेदन कर देती हूँ—मानव सेवा संघ की आजीवन सदस्यता अथवा किसी भी प्रकार की सदस्यता स्वीकार करने का क्या अर्थ है? कैसे वह हमारे जीवन के विकास में सहायक बन सकता है? इस सम्बन्ध में कुछ सुन लीजिए। मानव सेवा संघ साधकों का संग है। इसका उद्देश्य अपना कल्याण तथा सुन्दर समाज का निर्माण है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह संघ मानव-मात्र को सेवा, त्याग और प्रेम की प्रेरणा देता है। सभी मत-सम्प्रदाय और मजहब के भाई-बहन इसके सदस्य हो सकते हैं।

संघ की सदस्यता की स्वीकृति साधक भाई-बहन को अपने सुधार की प्रेरणा देती है। यदि सम्भव हो तो प्रत्येक सदस्य को प्रतिदिन संघ की प्रार्थना एवं नियमों का पाठ करना चाहिए। इसका शुभ परिणाम यह होगा कि प्रत्येक परिस्थिति में सदस्य को याद आएगा कि मैं संघ का सदस्य हूँ। अतः मुझे जानी हुई भूल नहीं करनी है, और की हुई भूल नहीं दोहरानी है। कुटुम्बी जनों के अधिकार की रक्षा करनी है और अपने अधिकार का त्याग करना है, इत्यादि। भूल-रहित जीवन में शान्ति, मुक्ति और भक्ति की अभिव्यक्ति होती है और भूल-रहित व्यक्तियों के समूह से निर्भूल समाज का निर्माण होता है।

संघ के कार्यक्रम में सर्व प्रमुख सत्संग को माना गया है। व्यक्तिगत सत्संग, पारिवारिक एवं सामूहिक सत्संग के द्वारा जीवन में जागृति लाने

की चेष्टा की जाती है। प्रत्येक सदस्य को अपने जीवन में सत्संग को विशेष महत्त्व देना अनिवार्य है। ग्यारह नियमों में से, जितने नियमों का पालन अपने द्वारा सम्भव हो, तत्काल प्रयास आरम्भ कर देना चाहिए। श्री महाराज जी के शरीर के नाश के बाद भी यह कल्याणकारी विचारधारा मानव-समाज में बनी रहे, इस उद्देश्य से मानव सेवा संघ को श्री महाराज जी ने रजिस्टर्ड सोसायटी बना दिया है। इसी कारण इसके सदस्य होने का नियम है । वार्षिक सदस्य होते हैं, आजीवन सदस्य, सम्मानीय सदस्य, एवं दानी सदस्य। संघ के आजीवन सदस्यों का सदस्यता-शुल्क संस्था के स्थायी कोष में जमा होता है, इसका ब्याज केन्द्रीय कार्यालय द्वारा संचालित प्रवृतियों में खर्च होता है। इस संस्था को दिया गया दान आयकर से मुक्त है। प्रत्येक आजीवन सदस्य का निकट सम्बन्ध वृन्दावन केन्द्र से रहता है।

प्रत्येक वर्ष होली के अवसर पर वृन्दावन में मानव सेवा संघ का वार्षिकोत्सव सत्संग-समारोह होता है। उस समारोह का निमन्त्रण प्रत्येक आजीवन सदस्य के पास आता है। जितने भी आमंत्रित सदस्य यहाँ आते है, सबके भोजन, निवास एवं सत्संग सुनने की व्यवस्था सत्संगी भाई-बहनों के सहयोग से आश्रम की ओर से होती है। इन सारी प्रवृत्तियों का मूल उद्देश्य है मानव-साधक बन जाए और स्वाधीनता पूर्वक शान्ति, मुक्ति और भक्ति की साधना में लग जाए। साथ ही यथा शक्ति सेवा के द्वारा सामाजिक उन्नति में सहयोगी बने। सारांश यह है कि व्यक्ति का शरीर विश्व के काम आ जाए, अहम् अभिमान-शून्य हो जाए, हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो जाए, यह मानवता की पूर्णता है। मानवता की पूर्णता में ही मानव सेवा संघ की सफलता है।

मानव सेवा संघ की साधन प्रणाली का परिचय आपने प्राप्त कर लिया है। जिन साधक भाई-बहनों को इस साधन प्रणाली से अपनी साधना में सहायता लेनी हो, वे निम्न प्रकार से लाभ उठा सकते हैं। संघ द्वारा

प्रकाशित पुस्तकों के पढ़ने में जिनकी रुचि हो, वे पुस्तकें पढ़ें। स्थानीय शाखा द्वारा संचालित दैनिक एवं साप्ताहिक सत्संग में भाग ले सकते हैं। साधकों के लिए सही मार्ग-दर्शक के रूप में संघ द्वारा 'जीवन दर्शन' मासिक पत्रिका प्रकाशित होती है। पत्रिका पढ़ने में रुचि रखने वाले भाई-बहन पत्रिका के ग्राहक बन सकते हैं। उपर्युक्त बातों की विशेष जानकारी यहाँ पर केन्द्रीय कार्यालय से प्राप्त कर सकते हैं। भगवत कृपा एवं उत्साहित कार्यकर्त्ताओं के सम्पर्क से तथा संघ की विचार धारा से प्रभावित होकर अनेक भाई-बहन आजीवन सदस्य बन रहे हैं। मानव सेवा संघ अपने साधारण एवं आजीवन सभी प्रकार के सदस्यों का हार्दिक अभिनन्दन करता है। जिन भाई-बहनों ने अपने कल्याण एवं सुन्दर समाज की निर्माण की दिशा में सक्रिय कदम उठाया है, साथ ही संस्था को भावात्मक एवं क्रियात्मक सहयोग दिया है, सर्व समर्थ प्रभु आपका जीवन सफल बनाएँ यह हमारी प्रार्थना है।

●

प्रवचन 8

उपस्थित महानुभाव, सत्संग-प्रेमी माताओ, बहनो और भाइयो !

यह विचार विनिमय का समय है, एक प्रश्न आया है, मैं प्रश्न सुनाती हूँ।

प्रश्न—बुराई-रहित होने के लिए बुराई को नापसंद करने की सलाह, मानव सेवा संघ देता है। नापसंद का थोडा अर्थ स्पष्ट करें। जैसे क्रोध को पसंद नहीं करता, मन, बुद्धि और हृदय से भी क्रोध को पसंद नहीं करता निज अनुभव से भी क्रोध के बुरे परिणाम के कारण क्रोध को पसंद नहीं करता। इस तरह आन्तरिक और बाह्य चेतना के स्तरों पर नापसंद करने पर भी कभी-कभी क्रोध आ जाता है और उसके अधीन होकर कार्य कर बैठता हूँ। अब इस क्रोध को किस प्रकार नापसंद करूँ कि कभी क्रोध के अधीन होकर कार्य न करूँ ?

उत्तर—क्रोध की जो बुराई है वह तो उससे बड़ी बुराई की प्रतिक्रिया है । उससे बड़ी बुराई क्या है ? कि संसार में आ करके किसी पर अपना अधिकार मानना, यह जड़ है क्रोध की। जब हम दूसरों पर अपना अधिकार मानते हैं और उस अधिकार की पूर्ति नहीं होती तब क्रोध आता है। मूल बुराई है अधिकार मानना और उसे मिटाने का, उसे नापसंद करने का मूल उपाय है अपने अधिकार का त्याग करना।

आप अधिकार मत मानिए, तो क्रोध की उत्पत्ति अपने आप खत्म हो जाएगी। क्रोध नापसंद तो आता ही है, चाहते नहीं है क्रोधित होना और उसके परिणामों को भी आप जानते ही हैं, आपने ही लिखा है। तो उसको जड़ से काटिए जो अपने आप से होने वाला संवेग है, खुद ही एकदम से उत्तेजना जो आ जाती है, तो उसके कारण को खत्म कीजिए तो उत्तेजना का आना बन्द हो जाएगा। और उसका एक मुख्य कारण है निकटवर्ती जन समुदाय पर अपना अधिकार मानना। पिता होकर पुत्र पर,

पत्नी होकर पति पर, पति होकर पत्नी पर, मालिक होकर नौकर पर, व्यक्ति होकर समाज पर, नागरिक होकर देश पर, जीव होकर ईश्वर पर, अधिकार मानने की जो गलती है, उसी से क्रोध की उत्पत्ति होती है। हम सब लोग साधक है, साधना की दृष्टि से विचार करने बैठे हैं, तो साधक को तो चाहिए कि वह हर प्रकार से परिवार, समाज, देश, सबके काम आने की सोचे, स्वयं अपना अधिकार किसी पर नहीं माने। अपने अधिकार की पूर्ति के लिए किसी से सम्बन्ध न रखे। यह एक ऐसा सुधार है कि स्वभाव से ही आपके जीवन में आ जाएगा, तो इसके बाद आपको क्रोध को रोकने के लिए कोई नया उपाय नहीं करना पड़ेगा। ऐसा होगा, तो कर्तव्य का पालन करना सहज हो जाएगा। कर्तव्य-पालन में क्या होता है? निकटवर्ती जन समुदायों के अधिकारों की रक्षा होती है। स्वामी जी महाराज की प्रणाली में आपने इन बातों को बहुत सुना होगा, जगह-जगह पर जहाँ-वहाँ पर सब अनेक रूपों में, अनेक स्थलों पर महाराज ने इस बात का विवेचन किया है कि भई अपने अधिकार का त्याग और निकटवर्ती जनों के अधिकार की रक्षा। तो दूसरे के अधिकार की रक्षा करने में कर्तव्य का पालन हो जाता है और अपने अधिकारों के त्याग में राग और आसक्ति खत्म हो जाती है। नापसंद करने में कोई विशेषता नहीं है कि इतनी डिग्री में नापसंद किया तो इतनी डिग्री में नापसंद किया नापसंदगी तो नापसंदगी है, उसमें और कुछ नहीं करना होगा लेकिन उस नापसंदगी के आधार पर, इस विकार का नाश करने के लिए उसके मूल कारण को मिटाना होगा। कारण है अधिकार मानना।

जिस किसी पर अधिकार मानो, उसी पर क्रोध आ जाता है। अधिकार मानना आप विचार के द्वारा छोड़ सकते हैं। अकेले में बैठ करके शान्त होकर विचार करिए, सोच-विचार करके जिन-जिन व्यक्तियों के प्रति आपका जो कर्तव्य सूझता है, वह कर्तव्य पूरा करिए और उसके बदले में

उससे किसी प्रकार की कोई आशा मत रखिए। आशा नहीं रखिएगा तो क्रोध नहीं आएगा। क्रोध दुर्बलता की भी निशानी है। क्रोध असंतुलन की भी निशानी है। क्रोध अधिकार-लोलुपता की भी निशानी है। क्रोध बल के अभिमान की भी निशानी है। कमजोर आदमी एकदम से आवेश में आकर के जो सो नहीं करने लग जाता है? कमजोर आदमी को भी क्रोध आता है, लेकिन वह जरा सँभाल में रहता है क्योंकि कमजोर आदमी जानता है कि हम कुछ कर नहीं सकते। क्रोध विशेष बल के अभिमान से भी आता है। बल के अभिमान का त्याग करना, पद-लोलुपता, अधिकार-लोलुपता का त्याग करना, दूसरों से किसी प्रकार की आशा न रखना और अपने कर्तव्य का पालन करना और वर्तमान जीवन को सरस रखना। सातों बातें आप याद रखिए। वर्तमान अगर नीरस है तो नीरसता में भी बहुत क्रोध आता है। भीतर की जो अनेक प्रकार की अतृप्त वासनाएँ हैं, उनकी पूर्ति के लिए जब उनका नहीं मिलता है या जोर डाल करके जब उनको रोका जाता है तब भी क्रोध आता है । ये बातें जो है ये व्यक्तिगत सत्संग के आधार पर आप मिटा सकते हैं। अधिकार न मानना, कर्तव्य पालन करना, बल का अभिमान न रखना, दूसरों पर अधिकार न रखना और जीवन को सरस रखना। जीवन की सरसता में बहुत सी बातें आ जाएँगी। अकेले में बैठकर सोच-सोच करके इन उपायों को धारण करिएगा तो क्रोध मिट जाएगा।

प्रश्न—सबल व्यक्ति निर्बल पर अत्याचार करे तो कैसे, क्या करना चाहिए?

उत्तर—आप सबल हैं कि निर्बल हैं, मैं प्रश्नकर्त्ता से पूछ रही हूँ।

प्रश्नकर्त्ता—निर्बल।

उत्तर—आप पर कोई अत्याचार कर रहा है या अन्दाजी बात लिख रहे हैं?

प्रश्नकर्त्ता—अन्दाजी नहीं है।

उत्तर—क्या-क्या करने का सोचा है आपने, कुछ किया? कर नहीं सके?

प्रश्नकर्त्ता—जी, नहीं,

ठीक है। कई बातें हैं इसमें। स्वामी जी महाराज का कहना ऐसा है कि मैंने यदि अपने पर स्वयं अत्याचार न किया होता, तो किसी की सामर्थ्य नहीं थी कि वह मेरे साथ करता। तो साधक होकर के पहले तो यही सोचना चाहिए कि मैंने अपने द्वारा अपनी भलाई नहीं की। अगर मैं देह की आसक्ति से मुक्त हूँ तो कोई मेरा अपमान कर नहीं सकता। मुझे अपने साथ जो करना चाहिए था, सो मैंने नहीं किया तो मेरी इस भूल से आज मेरे प्रति ऐसा मालूम होता है कि कोई सबल जो है वह अत्याचार कर रहा है। यह तो आन्तरिक बात हुई। और बाहर से बात क्या हुई कि, अगर सबल है किसी प्रकार से आपकी शक्ति चलती है तो इस बलवान का हाथ पकड़ लीजिए कि नहीं मैं तुमको ऐसा नहीं करने दूँगा। अगर आप में बल नहीं है तो हृदय से पीड़ित होइए, सामर्थ्य वान को पुकारिए हे प्रभु इसका नाश करो ऐसा नहीं, हे प्रभु इसको सद्बुद्धि दे दो, यह बल का दुरुपयोग करना बन्द कर दे। मानव सेवा संघ के सदस्य होकर, साधक होकर इस सत्य का खूब प्रचार करिए कि भई बल मिला है निर्बलों की सहायता के लिए, बल मिला है निर्बलों को सताने के लिए नहीं। अगर बल का सदुपयोग करोगे तो अधिक बलिष्ठ होते जाओगे और बल का दुरुपयोग करोगे तो अत्यन्त बल-हीन हो जाओगे। यह तरीका है।

एक बड़ी अच्छी बात स्वामी जी महाराज के वचन से मिल गयी थी, मैंने लिख कर रखा था, आप को सुनाने के लिए। बहुत इन्ट्रेस्टिंग है, पढ़ूँ। किसी ने पूछा होगा असफलता का कारण, महाराज जी बता रहे हैं, जीवन में असफलता इसलिए है कि हम बिना सामान के रहना पसंद नहीं

करते हैं। सामान का पुजारी कभी भी दासता से मुक्त नहीं होता है। विज्ञानवेत्ता विज्ञान का और कलाकार कला का दास है। अब जान-पहचान के लोग आकर कभी परिचय दे देते हैं। स्वामी जी महाराज के मित्र की कोई लड़की हो, उसके साथ ही उसके पति आए और आकर पहचान बताएँ और कहे कि स्वामी जी महाराज, आप की अमुक लड़की का पति हूँ मैं। तो महाराज खूब हँसते और कहते भैया दास हो और पति कहलाते हो।

विज्ञानवेत्ता विज्ञान का और कलाकार कला का दास है, परन्तु प्रभु का दास, दास नहीं रहता है, वह प्रभु का प्यारा हो जाता है। प्रभु उसके प्रेमी हो जाते हैं और वह उसका प्रेमास्पद हो जाता है। आखिरी बात बहुत बढ़िया है कहते हैं कि यदि दासता ही स्वीकार करना है तो उसकी दासता स्वीकार करो, जो तुम्हें अपना प्यारा बना लें। दास बनना ही है, बिना दास बने नहीं रह सकते हो, तो उसका दास बनो जो सबकी दासता से मुक्त करके तुम्हें अपना प्यारा बना ले, अपने समान बना ले और अपने से विशेष बना ले। ऐसा कौन करेगा?

तो हमारे आपके जीवन में स्वाधीनता की माँग है। हम सब लोग स्वाधीनता पसंद करते हैं। मनुष्य की रचना ऐसी शानदार है कि वह किसी के अधीन होकर रहना पसंद नहीं करता है। भूल क्या होती है कि मन की गुलामी रखना चाहते हैं और व्यक्तियों के अपमान से बचना चाहते हैं। मन की दासता जीवन में है। वह संसार और समाज की ओर से मिलने वाले अपमान से बच नहीं सकेगा, जो मन का गुलाम है। तो मन की दासता पसंद करो, बुद्धि की दासता पसंद करो, धन की दासता पसंद करो, कहीं भी अगर उसकी आसक्ति को, उसकी पराधीनता को, उसकी गुलामी को पसंद करेंगे। तो फिर स्वाधीनता हम किसको कहते हैं? क्या मर्यादापूर्वक रहने को पराधीनता कहेंगे? क्या नियम-अनुशासन में रहने को पराधीनता कहेंगे? सबसे बड़ी पराधीनता तो यह है कि सामान के

बिना रहने की बात ही नहीं सूझती और सबसे बड़ा सामान जो आरम्भ से लेकर अन्त तक मेरा पिंड नहीं छोड़ता है। सृष्टि का जो सबसे नजदीक भाग है वह है यह अपना माना हुआ शरीर। यह सबसे बड़ा सामान है। जिसके कारण से बहुत संग्रह हो जाता है, बहुत संघर्ष हो जाता है। और कितने जन्म बरबाद हो गए, इस सामान की ममता में। सामान के बिना रहना हम पसंद नहीं करते और फिर चाहते हैं कि जीवन में सफलता मिल जाए। तो सफलता नहीं मिल सकती है। एक इस (शरीर) सामान को अपने पास रख लो और बाकी सब बिखेर दो, हम महल में नहीं रहेंगे, हम अधिक कपड़े नहीं रखेंगे, हम साथियों के साथ नहीं रहेंगे, हम एकांत में चले जाएँगे, तो एकांत कहाँ हुआ भाई? शरीर अपने साथ है और सूक्ष्म जगत् में बड़ी तीव्र गति से विचरण करने वाला मन अपने साथ है, बहुत प्रकार की इच्छाओं, वासनाओं को रखने वाली ये अनन्त शक्तियाँ अपने साथ हैं। तो इतने साथियों को लेकर के पहाड़ की गुफा में घुसो और कहो कि हम एकांत में रहेंगे, तो वहाँ एकांत रहेगा? जी नहीं रहेगा।

ऐसे साधकों को मैंने देखा है। जिनके सामने परिवार की बड़ी जिम्मेदारी है, संस्था की जिम्मेदारी है, संगी-साथियों के साथ बहुत तरह के कार्य हैं, तो वे लोग सोचते हैं कि अकेले जाकर बैठ जाओ तो सब झंझट से छुट्टी मिले। उनको जब अकेले बैठने का मौका लगता है, तब वे थोड़े ही समय में पाँच, सात दिनों में घबरा करके बाहर निकल आते हैं और कहते हैं कि ऐसे कैसे रहेगा आदमी? बिना किसी से बातचीत किये पागल हो जाएगा। क्या हो गया? तो हो क्या गया? देहातीत जीवन की जो सत्ता है, देहातीत जीवन में जो अमरत्व है, देहातीत जीवन में जो आनन्द है उस पर अपनी दृष्टि नहीं जाती, तो देह को लेकर के हम उसके संग में रहते हुए भी संसार से स्वाधीन होना चाहते हैं। तो कैसे होगा? नहीं हो सकता है।

स्वामी जी महाराज के साथ रहकर यह सब मैंने देखा, सुना और सीखा। तो समय बँध गया, तो साहब इतने समय पर अमुक आदमी मिलने के लिए आएँगे। उनसे इतनी देर बातचीत करनी है। इस समस्या का समाधान करना है। एक आदमी हो चाहे पाँच-दस हों, चाहे किसी प्रकार का प्रोग्राम हो। बँध गया तो समय बँध जाने पर मैं स्वामी जी महाराज से कहती कि महाराज, आपने समय तो बाँध लिया, अब वे लोग समय पर नहीं आए तो आपका विश्राम का समय भी चला जाएगा। यह हो जाएगा, वह हो जाएगा। तो स्वामी जी कहते देवकी जी, मैं तो समाज के बनाए हुए नियम के अधीन हूँ। अगर मैं ज्यादा उसमें तर्क लगाती तो कहते कि देखो सबसे बड़ी पराधीनता है कि आदमी शरीर को बनाए रखना चाहता है, शरीर को स्वस्थ रखना चाहता है, शरीर के माध्यम से सुख लेना पसंद करता है। इतनी बड़ी पराधीनता तो अपने भीतर रखो और फिर बाहर से समाज के साथ काम करने में जो नियम इत्यादि लग जाते हैं, अनुशासन लग जाता है, समय बँध जाता है तो उससे आदमी अपने को बँधा हुआ अनुभव करता है, तो यह बड़ी भूल है।

शरीर तो हमेशा ही संसार के साथ बँधा हुआ रहेगा। अगर आप शरीर की पराधीनता से अपने को मुक्त रखना पसंद करते हैं, तो शरीर को समाज का एक अविभाज्य अंग मान करके और उसी की खाद बना देना पसंद करिए। उसका मोह आप छोड़ दीजिए, उसकी गुलामी आप छोड़ दीजिए। और शरीर बना रहेगा तो तुम्हारा जीवन है और शरीर नहीं रहेगा तो तुम्हारा जीवन नहीं है, यह भूल अपने में से निकाल दीजिए तो आप स्वाधीन हो जाएँगें। तो सामान के बिना रहना अपने को पसंद न आए तो किसी भी प्रकार से स्वाधीनता नहीं मिल सकती है।

घर छोड़कर बाहर निकलेंगे, घर छोड़ कर बाहर जाएँगे तो जहाँ जाएँगे वहीं पर शरीर को रखने के लिए, सँभालने के लिए संसार बस

जाएगा। होगा ही, क्योंकि यह तो संसार ही है, जिसकी रचना होती है, जिसमें परिवर्तन होता है, जिसमें क्षति होती है, जिसका नाश होता है, उसी का नाम संसार है। तो यह जो एक सामान अपने पास है, उससे हमने इतना तादात्म्य कर लिया है आज कि उसके बिना भी मेरा अस्तित्व है, यह अपने गले उतरता ही नहीं है। लेकिन सत्य क्या है? सत्य यह है कि उसके बिना भी अपना अस्तित्व है? उसका पता कैसे चलता है? उसका पता तब चलेगा जब शरीर और संसार के अविछिन्न सम्बन्ध को हम लोग मानेंगे, शरीर को संसार की सेवा के लिए उसके हवाले करेंगे। देह में मम-बुद्धि अहम्-बुद्धि नहीं रखेंगे, यह मेरी है, यह मेरे लिए है, यह मैं हूँ। इन भूलों को मिटाने से उसमें से आसक्ति टूटती है। और समाज की सेवा करने से पुराने रागों की निवृत्ति होती है। समाज के साथ इसको मिला देने से, इसकी चिंता और सुरक्षा के भार से आदमी मुक्त होता है। सहज प्रवृत्ति के बाद सहज निवृत्ति की शान्ति में देहातीत जीवन का अपने को अनुभव होता है। तो एक बात तो यह है कि भाई शरीर के बिना भी हमारा अस्तित्व होता है, इस बात को मानना भी चाहिए और जानने का भी पुरुषार्थ करना होगा। अब आपके ज्ञान में यह बात आ जाएगी, जब इसका अनुभव हो जाएगा, तब भ्रम मिट जाएगा।

एक तो यह बात हुई। और दूसरी बात है कि अब प्रेम-पंथ की चर्चा कर रहे हैं महाराज। तो कह रहे हैं कि देखो संसार में किसी के प्रति अगर आसक्ति हो गई तो परिणाम क्या होता है कि वह वस्तु और वह व्यक्ति सदा के लिए तुम्हारे साथ रह नहीं सकता। ठीक है न? किसी को पसंद कर लिया हम लोगों ने, किसी व्यक्ति को पसंद कर लिया किसी वस्तु को पसंद कर लिया और उसको अपना माना तो कहते तो हम यह हैं कि इसकी मुझे सेवा करनी है, इसको मैं बहुत सँभाल रहा हूँ और इसकी बड़ी देखभाल कर रहा हूँ। तो आदमी को लगता है कि हम सेवा कर रहे

हैं और भीतर-भीतर, भीतर-भीतर वह उसकी पराधीनता में, उसकी दीनता में फँसता चला जाता है। तो आगे चल कर क्या होगा? कि वस्तु और व्यक्ति तो सदा साथ दे नहीं सकते, अन्त में उनका संग छूट जाएगा, वह क्षेत्र छूट जाएगा और उसकी गुलामी और उसकी आसक्ति अपने भीतर रह जाएगी, तो बहुत दुःख रहेगा। जैसे व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध मान करके आदमी कहता है कि हम तो उनको बहुत प्रेम करते हैं लेकिन बात उल्टी हो जाती है। जब संयोग में वियोग हो जाता है तब आदमी अधीर हो जाता है, अच्छा नहीं लगता कुछ भी। एक बार एक सज्जन स्वामी जी महाराज के पास आए। भागलपुर कमिश्नरी में मंदार पर्वत एक पर्वत है, बहुत ही रमणीक प्राकृतिक स्थान है, लोग कहते हैं कि बिल्कुल एकदम काश्मीर का बच्चा जैसा लगता है, इतना बढ़िया है वह, वहाँ पर उन्होंने एक ऋषिकुल की स्थापना की और बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए बहुत सा काम किया, जैसा उन्होंने बताया, मैंने देखा नहीं है । उन्होंने आकर के बताया था तो बहुत अधीर होकर के वे स्वामी जी महाराज के पास आए और कहने लगे। बताया उन्होंने अपना हाल महाराज, मैंने इतने वर्षों तक इतना-इतना काम वहाँ पर किया और बड़ी अच्छी शिक्षण-संस्था की स्थापना की।

एकदम सुन्दर रमणीक प्राकृतिक जगह में बच्चों को रखना और उनको विकसित होने देना और उनको सुन्दर ढंग से शिक्षित करना इसके लिए हम हिन्दुस्तान भर से अच्छे-अच्छे शिक्षक लाए और सब जगह से माँग-माँग कर भिक्षा लाए और यह सब मैंने किया और अब उसके बाद वहाँ की जो मैनेजिंग कमेटी है, वह किसी न किसी प्रकार से हमको हटा देना चाहती है और केस करके। वे भाई अधीर होकर के रोए, खूब आँसुओं से रोए तो थोड़ा-थोड़ा हम लोगों ने सुना उनकी सारी बात हमने नहीं सुनी, महाराज जी के पास आते-जाते सुनते रहते थे। महाराज जी ने

खूब उनको प्यार किया, खूब उनको प्यार किया, गले लगाया। दक्षिण भारत के रहने वाले सज्जन थे, और कहने लगे भैया तेरा भला हो जाएगा। भगवान ने बड़ी कृपा की तुम पर, अब तेरा कल्याण होगा। तब हम लोगों को सुझाया कि सेवा का फल होना चाहिए कि उससे अधिक तुम्हारा स्वयं का मूल्य बढ़ जाए। सेवा का अर्थ होना चाहिए कि जिसकी सेवा तुमने की, उससे तुम्हारा मूल्य बढ़ जाए।

अब उन भाई को कैसा लग रहा था? उन भाई को ऐसा लग रहा था कि उनको अपने में तो यह विशेषता मालूम पड़ रही थी, कि मैंने बड़ी सेवा की और उस सेवा के माध्यम से उस संस्था के साथ वे ऐसे बँध गए थे, कि वहाँ से हटने का सिलसिला देख करके अधीर होकर भागलपुर से भाग-भाग कर वृन्दावन आएँ और स्वामी जी महाराज के पास कुछ दिन तक रहें। महाराज जी ने उनको बहुत अच्छी तरह से, ज्ञानपूर्वक, प्रेम पूर्वक सँभाला और व्यावहारिक ज्ञान महाराज को कुछ कम नहीं था। दुनिया को कैसे सँभालते हैं, बिगड़ते हुए मामले को कैसे थामते हैं यह सब भी उनको खूब प्रैक्टिकल इन्टैलीजेन्स बहुत ऊँची डिग्री का था। मुझे याद है हर तरह से स्वामी जी महाराज ने मुझे सँभाल लिया, अपने पास रख करके और हम लोगों से जब बातचीत होने लगी तब उन्होंने कहा। देखो देवकी जी, यह सेवा का एक नमूना है। भाई को भ्रम है कि मैं सेवक हूँ, सेवा करते-करते यह भाई बेचारा उस संस्था का दास बन गया है। अब वहाँ से हटने का मामला जब सामने आया तो अधीर हो रहा है। तो बहुत समझाया उन्होंने, बताया। उदाहरण मुझे याद आ गया कि जिन लोगों की दशा में इस प्रकार की बात है, अपनी ओर से सोचते हैं कि हम तो उपकार कर रहे हैं लेकिन भीतर-भीतर, भीतर-भीतर उस उपकार के बदले में पता नहीं क्या पसंद करते हैं कि उसकी दासता में बँध जाते हैं। ऐसा होना नहीं चाहिए।

होना क्या चाहिए? कि हमेशा साधना की दृष्टि से कहीं भी कुछ करने जाओ, तो अपना मूल्य सदा ही उससे बढ़ा कर रखो। राग की निवृत्ति नहीं हुई, तुम्हारे भीतर से करने के राग के मिट जाने की शान्ति नहीं आ गई, बे-सामान रहने का बल नहीं आ गया तो सेवा क्या बन गई? सेवा के बल पर मुझे अधिक सामान मिल जाना चाहिए, सेवा के बल पर मुझे अधिक सुविधा मिल जानी चाहिए, इस प्रकार की कामनाएँ यदि मुझ में पैदा हो गई तो मैंने सेवा की कि भोग किया? गलती हो गई न? इसलिए महाराज जी कह रहे हैं जीवन में असफलता इस कारण से है कि हम बे-सामान के जीवन को पसंद नहीं करते हैं, तो एक बात तो यह कही। अब आगे चल करके कह रहे हैं सच्ची बात है कि जिस समय हम सब भाई-बहन देह की पराधीनता और देह में ममबुद्धि, अहम्-बुद्धि लेकर के जब बैठे हैं हम, शरीर मेरा है शरीर मैं हूँ इतना तादात्म्य हो गया है कि देह से अलग अपना कोई अलग अस्तित्व ही नहीं भासित होता।

यहाँ से किस नीचे स्तर से हम लोगों की साधना का जीवन आरम्भ हो रहा है, यह भी तो विचार कर देखो। क्या करें? तब कह देते हैं महाराज कि अगर अपनी दुर्बलता के कारण किसी का सहारा लिए बिना नहीं रहा जाता है और दासता को पसंद करने की आदत ही बन गई है, दास ही बनना चाहते हो तो भाई उस परमात्मा का दास बनो जो कि तुम्हें पराधीन नहीं रखेगा, स्वाधीन बना देगा, तुम पर शासन नहीं करेगा, तुमको पूर्ण बना लेगा। तो दास ही बनना है तो उसकी दासता स्वीकार करो। यह बात मुझे बहुत अच्छी लग गई। हमने कहा कि बहुत बढ़िया बात है मानव समाज के लिए, अगर किसी के अधीन ही होकर रहना पसंद है तो परम स्वाधीन की अधीनता स्वीकार करो।

जिसमें इतनी क्षमता है कि वह तुम्हें स्वाधीन भी बना देगा और अपने प्रेम से भरपूर भी कर देगा और आगे चल कर के महाराज की ऐसी

भी वाणी है कि देवकी जी, ऐसा मित्र संसार में तुमको नहीं मिलेगा, ऐसा कोई बड़ा आदमी तुमको नहीं मिलेगा, जिसके आगे जाकर के तुम झुको तो वह तुमको अपने समान बना दे। समान बना देने की सामर्थ्य भी इस दुनिया में किसी की नहीं है। परमात्मा इतने अच्छे हैं और मनुष्य उनको इतना प्रिय है कि उस लिस्ट में हम सब लोगों का नाम है। आप उनको इतने प्रिय हैं कि उनके दास बन कर रहें उनके पास तो वे तुमको सब प्रकार की दासता से मुक्त कर देंगे, सब जन्म जन्मान्तर की पराधीनता मिटा देंगे। तो जो सचमुच उसका दास होना पसंद करता है, भक्तों ने ऐसा बताया है, कि भगवान उस भक्त के दास हो जाते हैं। ऐसा कोई साथी इस दुनिया में तो नहीं मिलेगा, जिसकी दासता स्वीकार करो वह तो खा ही लेना चाहता है, खत्म ही करना पसंद करता है।

एक परमात्मा इतने उदार हैं, इतने प्रेमी हैं, इतने समर्थ हैं, उनकी तीन विशेषताएँ मेरे बहुत काम आती हैं—आपके भी काम आ सकती है आपने भी सोचा होगा—समर्थ होना, उदार होना और प्रेमी होना। तो इतनी अच्छी बात है। तो स्वामी जी महाराज कह रहे कि मेरे भाई, अगर दास होना ही चाहते हो तो उस परमात्मा के दास होकर रहो जो कि तुम्हें अपना प्यारा बना लेगा। तो दुःख मिटा देगा एक बात, अभाव मिटा देगा दूसरी बात, अपना प्यारा बना लेगा तीसरी बात। और एक जगह पर ऐसे भी कहा कि अपने से विशेष भी बना लेगा वह और भी आगे की बात है, इस प्रसंग में नहीं है। दूसरी जगह उन्होंने कहा था।

तो सच्ची बात यह है कि यहाँ पर कहीं अपने को आराम मिलता नहीं है। बहुत प्रयत्न किए, बड़ी बुद्धिमानी लगाई, बहुत आपस में संगठन किया बहुत कुछ किया लेकिन आराम मिला नहीं तो स्वामी जी महाराज की सलाह यह है कि मेरे भाई तुम्हारे लिए तो यह कर्म-क्षेत्र है, तुम्हारे लिए तो यह साधन क्षेत्र है। विश्राम तो तुम्हारे अपने में है अथवा उस

सर्वसमर्थ शरण्य की शरणागति में है और तो कहीं है नहीं। तो क्यों आराम में सारी जिन्दगी बिता करके अपने को थका रहे हो, परेशान हो रहे हो, इसलिए मुझे याद आ जाता है—'अखिल लोक विश्राम, जिसमें सारा विश्व विश्राम लेता है, जिसमें सारे विश्व को आधार मिलता है, जो सभी का अपना है, सदैव अपना है, सर्वत्र विद्यमान है, उसको जीवन का आधार बना लो, उसकी दासता पसंद कर लो तो अपना कल्याण हो जाए। अब उसकी दासता में क्या बात होगी भाई? बड़ा अच्छा लगेगा अगर मैं अपने को परमात्मा की दासता में डाल दूँ, उनकी दासता को स्वीकार कर लूँ तो बड़ा अच्छा लगेगा। आप लोग भी सोच रहे होंगे। लेकिन उसमें एक बड़ी कठिन बात है, वह यह है कि जब भगवत् समर्पित होकर रहने का प्रश्न अपने सामने आए तो हम ईश्वर-विश्वासी भाई-बहनों को पहले से इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि उस समर्थ स्वामी की दासता स्वीकार करने के बाद फिर अपने मन की आवाज पर हमें नहीं चलना है।

यही भूल हो जाती है। अपना संकल्प रखो और फिर कहो हे प्रभु मैं तुम्हारा दास हूँ, तो यह बनेगा नहीं। अपना संकल्प छोड़ दो। मीरा जी का कहना सार्थक था, मीरा जी कहती थी—'जनम जनम की मीरा दासी' मीरा जी कहती थी—'मैं निरगुनिया गुन नहीं जानी एक धनी के हाथ बिकानी।' स्वामी जी महाराज ने एक बार सुनाया था, मैं तो हो गया उनका बिना दाम का ऐसे कुछ गाते थे कभी मौज में आकर के। तो एक धनी के हाथ बिकानी बे मोल बिकानी और जनम-जनम की मीरा दासी, उनका कहना सत्य था, कैसे सत्य था कि उन्होंने अपना करके अपने में कोई संकल्प नहीं रखा। अपने पर अपना अधिकार नहीं रखा। हम सब लोग जो प्रभु से सम्बन्ध स्वीकार करते हैं, उनके समर्पित होकर रहना चाहते हैं, शरणागति का भाव लेकर जीवन में रहना पसंद करते हैं तो उसके साथ इस बात की बड़ी भारी आवश्यकता है कि अपने पर अपना अधिकार भी न मानें और अपना कोई संकल्प भी न रखें।

तो एक दिन मैं अकेले में बैठकर सोच रही थी, प्रोग्राम तो बनते ही रहते हैं, तो सोच रही थी, तो सोच करके एक रूपरेखा मैंने बनाई कि ऐसे-ऐसे काम मुझे करना है, अमुक-अमुक जगह पर मुझे जाना है, तो पता नहीं कागज में लिख करके भी रखा तब भी भीतर से पूरा उत्साह नहीं होता था कि पत्र लिख दूँ और इन्तजाम कर लूँ ऐसा जैसे कि एक दम भरा हुआ लगता है। वह लग ही नहीं रहा था तो हमने थोड़ी देर सोचा, हमने कहा कि ऐसा क्यों हो रहा है? पता नहीं हमारे भीतर से उत्साह नहीं उठ रहा है कि सबको पत्र लिख करके पक्का कर लूँ कन्फर्म कर लूँ तो थोड़ी देर के लिए मैंने छोड़ दिया। हमने कहा कि छोड़ कर देखूँ कि कैसे लगता है?

साइकलौजी का एक सिद्धान्त है, मनोविज्ञान का एक सिद्धान्त है कि चेतन स्तर पर अगर कोई बात स्पष्ट न होती हो तो कुछ देर के लिए छोड़ देना चाहिए। तब उसमें क्या होता है, कि भीतर से अगर कोई बात ऐसी है, जो आपके कौंसस लेवल पर तो नहीं है लेकिन अनकोंससली आपके चेतन स्तर के निर्णय को प्रभावित कर रही हैं। कुछ देर के लिए छोड़ दिया जाता है, तो एकदम से भीतर की सच्ची बात प्रकट हो जाती है, मालूम हो जाता है, फैसला हो जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार थोड़ी देर के लिए मैंने छोड़ दिया, हमने कहा रहने दो थोड़ी देर के बाद सूचना करेंगे। तो कई घण्टे बीत गए फिर दूसरे-दूसरे काम में लग गई। तो दुनिया के बड़े-बड़े मैथेमिटेशियन जो हुए है, आजकल के आधुनिक युग के, उन्होंने अपने सम्बन्ध में ऐसा लिखा है कि हमने ऐसा किया, ऐसा किया, यह समस्या हल नहीं हुई, प्रोबलम सौल्व नहीं हुई, ऐसा हुआ अब हम निकल कर चले गए, घूमने-घामने चले गए। तो चढ़ने के लिए कदम उठा रहे थे तो मुझको प्रकाश मिल गया और यह उत्तर मुझ को मिल

गया। दुनिया के बड़े-बड़े काम इस ढंग से हुए हैं, मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस विषय पर काफी रिसर्च हुआ है।

तो कभी-कभी मौका लगने से मैं काम में ले लेती हूँ। तो मैं चुपचाप छोड़ करके उसको अपने दूसरे-दूसरे काम में लग गई तो कई घण्टे लग गए, फिर जब अपनी जगह में आकर के जहाँ बैठना है वहाँ बैठी, तो जो अधूरा प्रोग्राम सामने था, उसकी रूपरेखा फिर सामने आई, तो आई तो हमने कहा, मैंने सोचा कि मेरा इतना जोर क्यों है इस बात पर। उनका काम है, उनकी शक्ति है, उनका दिया हुआ अवसर है तुम ऐसा क्यों सोच रही हो? तो एकदम से मेरे ध्यान में आया कि अपना संकल्प छोड़ करके जिन्होंने उनकी आज्ञा, उनकी प्रसन्नता के लिए काम करना पसंद किया उसके भीतर ऐसी दुविधा पैदा नहीं होती है। कुछ नहीं।

अच्छे ऊँचे भक्तों के जीवन को थोड़ा सा नजदीक से देखने को मिला, तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि प्रभु के संकेत पर अपना कोई संकल्प न रखने वाले भक्तों को, एक काम पूरा करते हुए अगले काम के लिए कुछ सोचना नहीं पड़ता है। फिर मेरे ध्यान में आ गया कि इसमें मेरा अपना संकल्प शामिल होगा, मेरी अपनी कोई रुचि की बात होगी, इसलिए यह सुलझ नहीं रहा है। तो मैंने सँभाला और उससे मुझे लाभ हुआ। तो इस तरह से अपने साधक भाई-बहनों की सेवा में नम्र निवेदन करती हूँ कि प्रभु के होकर रहना, यह बात तो हम सब लोगों को बहुत अच्छी लगती है। उसमें बाधा क्या है? कि हम अपने संकल्पों को नहीं छोड़ते हैं? अपने संकल्पों को नहीं छोड़ेंगे तो संकल्पों के होकर रहने लगे फिर प्रभु के होकर रहने का क्या अर्थ निकला? कोई अर्थ नहीं निकला। अपनी रुचि के अनुसार काम करने के लिए हम रहने लगे, फिर उनकी आज्ञा पर चलने का क्या अर्थ हुआ? कोई अर्थ नहीं हुआ। तो अपने पर अपना

अधिकार मानते हो, तो उनको जीवन समर्पित करने का क्या अर्थ हुआ? उनका अधिकार अपने पर स्वीकार करें।

महाराज जी से किसी ने पूछा था, वे भाई अभी बता रहे थे मुझे किसी ने पूछा था महाराज, यहाँ के बाद आपका कहाँ का प्रोग्राम है? तो सहज-भाव से कह दिया कि भई गेंद को क्या मालूम कि खिलाड़ी किधर फेंकेगा? तो कितनी निःसंकल्पता है। इसका अर्थ है—ईश्वर-समर्पण इसका अर्थ है—ईश्वर की दासता। गेंद को क्या मालूम है कि खिलाड़ी किधर फेंकेगा? वे क्या जानें? तो उनके वचनों में हमारे लिए जीवन की राह है। ऐसा सोच करके देखो, एक दिन, एक भगवत् भक्त के पास मैं बैठ करके बातचीत कर रहीं थीं, तो बातचीत हो चुकी तो हमने कहा कि जीवन की ऐसी कोई समस्या तो है नहीं, कि जिसका उत्तर महाराज जी में न मिल गया हो।

हमने कहा समस्या तो कुछ नहीं। इतनी सी बात मैं सोच रही हूँ कि कुछ-कुछ आधार जरूर होगा कि जिस पर मेरा अहम्-भाव टिका हुआ है और उतने में देर लग रही है। ऐसे सहज भाव से उनके मुख से निकला कि डरने की क्या बात है? अगर अहम् को रखना ही पसंद है, तो इस बात का अहम् रखो कि मैं उनका हूँ। आप अहम् को न रखने के लिए परेशान क्यों हैं? सुधारना, सँभालना, सँवारना और प्रेम के माध्यम से अपने समर्पित साधक को अपने स्वरूप में मिला लेना, यह सब तो उनकी बात है, वे तो करते ही हैं, सबके साथ करते हैं, अवश्य करेंगे बिना किए किसी को छोड़ेंगे नहीं, तो उसमें क्या चिंता है। अगर अहम् आपको दिखाई ही देता है, तो उसको थोड़ा बदल डालो, नाश की बात क्यों सोचो? उसको अगर अपने जीवन में गौरव लेना है, तो इस बात का गौरव मत लो कि मैं करोड़पति हूँ, इस बात का गौरव मत लो कि मैं डिग्री धारी हूँ, इस बात का गौरव मत लो कि मैं बड़ा जपी-तपी हूँ। कहीं तक भी

चले जाओ कोई फर्क नहीं पड़ेगा, कि मैं बहुत धनी हूँ कि मैं बहुत विद्वान हूँ कि मैं बहुत तपस्वी हूँ। ऐसा अहम् मत रखो। अगर अहम् को रखना ही है, तो ऐसा अहम् रखो कि मैं भगवत् समर्पित हूँ, मैं प्रभु का बालक हूँ, मैं प्रभु का मित्र हूँ, मैं प्रभु का दास हूँ। इस प्रकार का रखो कोई हर्ज नहीं होगा। इसमें भी वही काम होगा जो अपने साथ आप जबरदस्ती करना चाहती है। तो यह बात भी मुझे बहुत अच्छी लगी। ये दोनों प्रसंग आज अपने भाई-बहनों की सेवा में निवेदन कर रही हूँ कि आप अगर सोचें भीतर-भीतर कि क्या बताएँ दुनिया की गुलामी में रहने की आदत बन गई है, तो अगर गुलाम ही होना चाहते हो तो उस परम स्वाधीन की गुलामी पसंद करो जो कि सबसे पहले तुमको सारे बंधनों से छुड़ा करके, स्वाधीन बना देगा। जो स्वाधीन है, वही स्वाधीन बनाएगा, जो प्रेमी है वही प्रेमी बनाएगा, जो उदार हो वही उदार बनाएगा, जो मुक्त है, वही मुक्ति प्रदान करेगा।

इस दृष्टि से दास बनना हो तो उसी के दास बनो, और गौरव लेना हो अपने को कि मैं बहुत बड़ा आदमी हूँ तो गौरव भी लेना हो तो इसी बात का गौरव लो कि मैं प्रभु का दास हूँ, मैं प्रभु का बालक हूँ, मैं प्रभु की प्रिया हूँ, मैं प्रभु की माता हूँ, मैं प्रभु का पिता हूँ कोई हर्ज नहीं है, उनको सब पसंद हैं। और सबके अनुसार हमको ऐसा लगता है, इतना मजा आता है, सोचने से। बड़ी छोटी बात है, कि हम सब लोग संकोच में पड़े रहते हैं, मैं तो भाई बहुत दिनों तक संकोच में थी बार-बार इस बात को ध्यान में लाती थी कि भई मैंने सुना है कि वे तो महान् और सब प्रकार से अनन्त ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं तो हमको ऐसा लगता कि ऐसा सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ परमात्मा, समर्थ परमात्मा और प्रेम का अथाह सागर परमात्मा—तो उसके आगे हमारी कौन-सी गणना है कि हम उसके सामने खड़े होने की बात सोचें और उससे सम्बन्ध स्थापित करने की बात

सोचें। ऐसा सोच करके मुझे बहुत दिक्कत होती थी, संकोच मालूम होता था। स्वामी जी महाराज ने एक दिन बड़े आनन्द की मस्ती में यह कहा कि देवकी जी, तुम ऐसा क्यों सोचती हो, ऐसा मत सोचों, अपनी बात लेकर के खूब आनन्दित होकर कहने लगे कि अच्छा सोचा तो अगर मेरे जैसे, मुझ जैसे अकिंचन की मित्रता का सम्बन्ध वे स्वीकार नहीं करेंगे, तो लाला रह जाएँगे ठन-ठन पाल मदन गोपाल। अकेले परमात्मा का मित्र होने के लिए कोई दूसरा परमात्मा आएगा? कितना विश्वास है। लाला रह जाएँगे ठन-ठन पाल मदन गोपाल अकेले रह जाएँगे। उनसे मित्र बनने के लिए उनके समान दूसरा परमात्मा नहीं आएगा। तो सच पूछिए तो हम सभी भाई-बहनों को उन्होंने इस धरती पर भेजा है तो अपने उसी आनन्द की वृद्धि के लिए, अपने उसी कौतुक के लिए उन्होंने हम लोगों को भेजा है।

हाड़ मांस का शरीर लेकर, मृत्यु का ग्रास बना हुआ शरीर लेकर इस धरती पर तुम विचरण करते हो।स्वामी जी महाराज ने लिखा है कि अपूर्णता के काल में, अपूर्णता को लेकर के इस धरती पर हम चलते-फिरते हैं, विचरण करते हैं, फिर भी, चाह, ममता और वासना का त्याग करके उस पूर्ण परमात्मा के प्रेम का पात्र बन जाते हैं, कितनी बड़ी बात है । तो इतना ऊँचा जीवन हो सकता है और नीचे धँसे रहो, अज्ञान के अंधकार में टटोलते फिरो, कौन मेरा साथ देगा, कौन मेरा दुःख का मददगार बनेगा? आगे चलकर के इस चीज की जरूरत पड़ेगी तो कहाँ से मिलेगा, तो ऐसी गरीबी को ही देख करके लज्जा के मारे जीवन इतना शिथिल करके छोटा हो जाता है। मैं कहती हूँ, हे भगवान! अनन्त परमात्मा का मित्र होकर, अनन्त परमात्मा का बालक होकर, अनन्त परमात्मा की प्रिया होकर तुच्छ वस्तुओं के बारे में सोचें? लज्जा की बात है कि नहीं?

सबसे पहला काम वे क्या करते हैं? कि आपकी पराधीनता को काटते हैं। किसी चीज की आवश्यकता ही नहीं रह जाती, शरीर का कोई

अर्थ ही नहीं रह जाता, और प्रेम में तो ऐसी विलक्षणता है, ऐसी विलक्षणता है कि जब तक यह भक्त के भीतर अभिव्यक्त नहीं हुआ तब तो लगता है कि हमारे में बहुत कमी है, मैं तो निराधार हूँ तो हे सर्वाधार, मुझे आधार दीजिए, हे सर्वाधार मुझे सँभालिए, हे सर्वाधार मुझे पवित्र बनाइए, तो अपने को पतित अनुभव करके हम लोग उनको, पतित-पावन को पुकारते हैं, अपने को अनाथ समझ करके हम लोग उन विश्वनाथ को पुकारते हैं, अपने को दीन समझ करके हम लोग उन दीन बन्धु को पुकारते हैं तो प्रारम्भ में तो दशा ऐसी रहती है।

क्या अर्थ? तो प्रेमी जो होता है वह परमात्मा को बाँधता नहीं है कि मेरे नैनों में बस जाओ कि मेरे दिल में बस जाओ, मरने के समय हाथ में वंशी लेकर के मेरे आँखों के सामने खड़े हो जाना, यह सब कुछ प्रेमी के हृदय में नहीं रहता है। क्यों? क्योंकि वह तो नित्य निरन्तर अपने में उनको विद्यमान पाकर के उस रस में अपने आपको ही भूलता है, फिर बाँधेगा किसके लिए? तो महाराज खूब आजादी में आनन्द की मस्ती में कह देते—जाओ यार तुम भी क्या कहोगे? तुम भी आजाद रहो मैं भी आजाद रहूँ। जहाँ अच्छा लगे वहाँ जाना, जिसमें तुम्हें प्रसन्नता हो सो करना। ऐसा कौन कह सकता है? जिसने अपने पर से अपना अधिकार उठा लिया, जिसने अपने सब संकल्पों का त्याग कर दिया और जिससे यह ठान लिया कि मैं तो उनका क्रीड़ा-क्षेत्र का कन्दुक हूँ, मैं तो उनके खेलने के लिए प्रिया-प्रियतम को रिझाने के लिए मैं गेंद हूँ। तो यह किस रूप में है? कि वे इसको जैसा चाहे उस रूप में प्रयोग करें।

गेंद कोई इच्छा रखता है? कि खिलाड़ी हमको इधर भेजे कि उधर भेजें, कि वहाँ बुलाओ कि वहाँ विदा करें। सब प्रकार की अपनी सब इच्छाओं से मुक्त होकर, सब प्रकार से अपने सब संकल्पों का त्याग करके। महाराज बहुत ही आतुरता से कहते कि भैया एक बार ऐसा करके देखो

तो फिर क्या गुल खिलता है। तो इस जीवन में इतना सौन्दर्य आ सकता है, इस जीवन में इतनी स्वाधीनता आ सकती है। हम सभी भाई-बहनों के लिए बड़ा अच्छा अवसर है, हमारे सामने हमारा सुनहला वर्तमान है। भूतकाल कैसा बीता उसकी परवाह मत करो, क्योंकि जिसकी करुणा का एक बूँद पाप के पहाड़ को क्षण भर में खत्म कर सकता है, उसके लिए हमारी भूलों का परिणाम मिटाना क्या बड़ी बात है? इसलिए भूतकाल के बारे में भी मत सोचो। बस इतनी सावधानी अपने लोगों को चाहिए कि भविष्य का एक भी क्षण उस परम प्रेमास्पद से विछिन्न होकर न जाए। उससे बिछुड़ कर न रह सकें, उसको विसरा कर हम न रहें, अपने संकल्प को जीवित न रखें। यदि दास बनना है तो उसका दास हो जाएँ, यदि अहम् रखना है तो गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है "यह अभिमान जाइ जनि भोरे, मैं सेवक रघुपति पति मोरे।" कितनी अच्छी बात है अस अभिमान जनि भोरे , यह अभिमान कभी भी भूले नहीं तो अभिमान हो तो इतना बढ़िया कैसा बढ़िया "मैं सेवक रघुपति पति मोरे।" मैं उनका सेवक हूँ और वे मेरे पति है। अभिमान ही रखना है तो इतना बढ़िया अभिमान जाइ रखो, जो सब प्रकार से तरण तारण करके, सदा-सदा के लिए कृतकृत्य कर दें।

●

प्रवचन 9

उपस्थित महानुभाव, सत्संग-प्रेमी माताओ, बहनो और भाइयो !

हम सभी साधक भाई-बहनों के सामने आज वर्तमान में एक प्रश्न है कि हम जिस स्तर के साधक हैं, वहाँ से अपने लक्ष्य तक कैसे पहुँचे ? सबसे पहली बात जो मुझे सूझती है, वह यह है कि पहले मनुष्य के व्यक्तित्व में शुद्धि आती है। फिर जब उसके भीतर से असत् के संग-जनित विकारों का नाश हो जाता है तब उसके शुद्ध अहम् में वह अलौकिक परिवर्तन होता है। जिस परिवर्तन के फलस्वरूप अनन्त की विभूतियों से वह अभिन्न होता है। यह एक प्रोसेस है, प्रक्रिया है।

अनेकों प्रकार की अशुद्धियों को रखते हुए, असत् के संग-जनित सुख के प्रलोभन को रखते हुए, आई हुई अनुकूलता से सुख को भोगते हुए हम सब लोग भगवत् भजन करना चाहते हैं, भगवत् भक्त होना पसंद करते हैं और उसके लिए विध्यात्मक अनेकों साधनों का अनुसरण करने लगते हैं। तो दोनों ही चीजें जीवन में चलती रहती हैं, एक ओर किया हुआ भजन-ध्यान भी चलता रहता है और दूसरी ओर अपने आप से होने वाला विषय-चिंतन भी चलता रहता है, लोभ और मोह का आक्रमण भी होता रहता है । इस प्रकार का एक मिश्रित जीवन चलता है। थोड़ी देर शान्त होकर बैठ भी गए, थोड़ी देर भजन भी कर लिया, थोड़ी देर पूजा भी कर ली, थोड़ी देर और किसी प्रकार का अभ्यास भी कर लिया और फिर काम से उठे तो विविध प्रकार के कार्य में लग जाने पर, क्रोध से प्रेरित भी हो रहे हैं, लोभ से प्रेरित भी हो रहे हैं, मोह से प्रेरित भी हो रहे हैं, दीनता और अभिमान से आक्रान्त भी हो रहे हैं और फिर 12 घंटे का 10 घण्टे का समय बीत गया, तो संध्या समय रात्रि में, सोने से पहले कुछ देर के लिए साधक बन कर प्रार्थना भी कर रहे हैं। ऐसी दशा रहती है कि नहीं ? जी रहती है।

तो मैं यहाँ निवेदन करना चाहती हूँ कि जिन भाई-बहनों के जीवन में थोड़ी-बहुत विध्यात्मक साधना का अभ्यास है, उसके प्रति निष्ठा है कि उसमें अभिरुचि है तो वे भाई-बहन अपनी की हुई साधना को छोड़ें नहीं। मानव सेवा संघ की प्रणाली में स्वामी जी महाराज ने हम लोगों को सुझाव दिया कि असाधन का नाश किया जाता है, साधन की अभिव्यक्ति होती है। व्यर्थ चिंतन का नाश किया जाता है, सार्थक चिंतन होता है। विषय-चिंतन का त्याग किया जाता है, भगवत् चिंतन होता है। तो ध्यान होने की चीज है, भगवत् चिंतन होने वाली बात है। करने वाली बात क्या है? तो करने वाली बात यह है कि मेरी जिन-जिन भूलों से जीवन में अनेकों विकार उत्पन्न हो गए, उन भूलों का त्याग मैं करूँ।

मेरा पुरुषार्थ है जाने हुए असत् के संग का त्याग, यह मेरा पुरुषार्थ है। और अपनी की हुई भूलों को, अपने जाने हुए असत् के संग का त्याग जब हम मिटा देते हैं, की हुई भूलों को छोड़ देते हैं, असत् के संग का त्याग कर देते हैं तो अपना पुरुषार्थ पूरा हो गया। फिर क्या होगा? कि अहम् रूपी अणु में जो अशुद्धियाँ उत्पन्न हो गई हैं, उन अशुद्धियों का नाश होता है। तो अशुद्धि का नाश यह पहली बात है, तो आप कहेंगे कि भाई मेरे में तो सामर्थ्य नहीं है कि अपनी अशुद्धि का नाश हम अपने से करें, मेरा तो संकल्प का बल इतना दुर्बल हो गया है कि शुभ संकल्प में भी ताकत नहीं है। ऐसा भी हो सकता है। सुख-भोग की प्रवृत्तियों को प्रश्रय देने से व्यक्ति शक्तिहीन हो जाता है, अपनी आदतों के अधीन हो जाता है। और बहुत सी बातों को गलत जानते हुए भी, उसको छोड़ने की इच्छा रखते हुए भी छोड़ने में चूक जाता है।

ऐसा भी कभी-कभी होता है, किसी-किसी के साथ ऐसा भी होता है, तो क्या होगा उसका? क्या उसके लिए बन्द हो गया रास्ता? मानव सेवा संघ से सलाह लीजिएगा तो संत के वचन से आपको सहारा मिल

जाएगा। क्या सहारा मिलेगा? कि अगर ऐसी ही दशा तुम्हारी हो गई कि भूतकाल की भूलों के प्रभाव से अहम् रूपी अणु में अर्थात् मुझमें इतने विकार उत्पन्न हो गए हैं, अपने में यह सामर्थ्य नहीं है कि हम उनको मिटा सकें। अगर ऐसी दशा हो गई है तब भी निराश होने की बात नहीं है, तब क्या करना चाहिए? तो मत देखो अपनी भूलों को और मत डरो अपने अपराधों से, निराश मत होओ अपनी दुर्बलता से। क्यों? क्योंकि सर्व सामर्थ्यवान तुम्हारे नाथ हैं, सर्वज्ञ परमात्मा तुम्हारे साथ है, क्षमा-सिन्धु तुम्हारे हितैषी हैं, सहायता देने वाले हैं।

इस कारण से निराश हुए बिना ही अपनी सारी दुर्बलताओं के साथ अपने सब विकारों को देखते हुए भी उस सामर्थ्यवान की शरण में आ जाओ। अधीर होकर एक बार पुकार कर कह दो हे समर्थ, मैंने अपनी ही भूलों से अपनी दुर्दशा कर ली है, अब आप अपनी कृपा से मुझे उबारिए। ऐसा हम लोग कह सकते हैं कि नहीं? जी! कह सकते हैं। तो दो बातें हो गई एक तो यह बात हो गई विवेक के प्रकाश में अपनी की हुई भूलों को देखा जाए और अपने द्वारा उनका त्याग किया जाए। तो जब अशुद्धि मिट जाती है तो बड़ा अच्छा लगता है। ऐसे सामर्थ्यवान साधक संसार में हुए हैं, अभी भी हैं, जिन्होंने सत्संग के प्रकाश में इस बात को जान लिया कि मेरा जीवन सुख, भोग के लिए नहीं है, सुख-दुःख के पार अमूर्त आनन्द के लिए है, परम प्रेमास्पद प्रभु को प्यार करने के लिए है। ऐसा जिन्होंने सत्संग के प्रकाश में, संत के सम्पर्क में निश्चय कर लिया, उन्होंने असत् के संग का त्याग कर दिया, ऐसे साधक भी हुए। और ऐसे साधक भी हुए कि जो प्यार करना चाहते हैं और नहीं कर पाते हैं, जो निर्विकार होना चाहते हैं और अपने ही बनाए हुए विकारों से हार जाते हैं, ऐसे साधक भी हुए।

तो अनुभवी संत जनों ने सलाह दी कि जितनी सामर्थ्य तुम्हारे में बच गई है, उतनी सामर्थ्य को लेकर तुम सत् पथ पर आगे बढ़ो। जहाँ

तुम अनुभव करोगे कि अब मेरा वश नहीं चलता। अधीर होकर परम कृपालु की कृपा का सहारा पसंद करोगे तो उसी समय करुणामय की करुणा का दरवाजा खुल जाएगा। तो बीच का एक यह भी रास्ता हो गया। एक ऐसा सामर्थ्यवान, जिसने निश्चय पूर्वक सब बुराइयों का त्याग कर दिया, एक ऐसा असमर्थ, जो कुछ भी नहीं कर सकता है तो अधीर होकर सर्वसमर्थ की शरण में अपने को डाल दिया। एक दोनों के बीच की दशा, जिसमें में अपने को रखती हूँ। आप में से भी बहुत से भाई-बहन अपने को उस बीच की दशा में पाएँगे कि बिल्कुल असमर्थता भी नहीं है और इतनी सामर्थ्य भी नहीं है कि एकदम अपने पुरुषार्थ से सब बुराई छोड़ दें। तो दोनों के बीच में, सामर्थ्यवान और घोर असमर्थ दोनों के बीच में हम लोग अपने को पाते हैं।

अगर बिल्कुल असमर्थ होते तो किसी प्रकार के सुख-भोग की प्रवृत्ति में शामिल ही नहीं हो सकते थे। जी? नहीं हो सकते थे। धन कमाने और मान, बड़ाई, प्रशंसा पाने की प्रवृत्ति में उलझ जाएँ यह भी नहीं हो सकता था, अगर असमर्थ होते तो । तो थोड़ी-थोड़ी सामर्थ्य हम लोगों में बची हुई है। बिल्कुल असमर्थ नहीं हैं और पूरी तरह समर्थ भी नहीं है। तो ऐसी बीच की दशा वाले साधक जो है, उनको यह सलाह दी गई कि तुम प्रातः काल सोकर जगते ही सबसे पहले व्यक्तिगत सत्संग करो। अब यह मैं सम्प्रदाय, मत, मजहब, देश, युग, परिस्थिति, सबसे पार मानव मात्र के जीवन के कल्याण के लिए जो साधना है, उसका विवरण दे रही हूँ। इस आशा से कि सत्संग में हमारे भाई-बहन जो आए हुए हैं वे तत्काल इसी समय कदम उठाना चाहें, तो उनके सामने राह दिखाई देनी चाहिए। इसलिए यह बात मैं निवेदन कर रही हूँ। पत्र-पुष्प के रूप में आपकी सेवा में अर्पण कर रहीं हूँ। क्योंकि मुझको यही निष्ठा दी गई कि श्रोता के रूप में भाई-बहन जो बैठे हैं, वे भी गैर नहीं है, कोई और नहीं है, प्रेमास्पद ही

हैं, जो मेरे वक्ता होने का राग मिटाने के लिए, श्रोता बन कर बैठे हैं। तो श्रोता भगवान के चरणों में पत्र-पुष्प अर्पण करना है मुझे, तो वह पवित्र होना चाहिए, सुगन्धित होना चाहिए, सुन्दर होना चाहिए। ये सुन्दर, पवित्र, सुगन्धित पत्र—पुष्प आपकी सेवा में अर्पित करूँ वे क्या हैं कि किसी भी मत के मानने वाले हैं, किसी भी गुरु से मंत्र दीक्षा ली हो आपने, किसी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए हों, कुछ भी आपकी साधना रही हो, आपका कल्याण अभीष्ट है मानव सेवा संघ को। मानव सेवा संघ के प्रणेता संत ने संघ की साधन-प्रणाली के रूप में मूक सत्संग को प्रस्तुत किया । जैसा भी साधक होगा, उसके कल्याण के लिए, उसके लिए आवश्यक वस्तु कुछ मिलनी चाहिए। तो यह बहुत आवश्यक तत्त्व है कि प्रात: काल सोते से जगते ही तत्काल, आप आँख-मुँह धोकर के शान्त होकर के बैठ जाइए और व्यक्तिगत सत्संग कीजिए। व्यक्तिगत सत्संग में क्या करेंगे ? तो पहले अपना लक्ष्य याद कीजिए।

आज जो सवेरा हुआ है और जिस दशा में मेरी आँखें खुली हैं, अब रात्रि में आँखों को बन्द करके निंद्रा की जड़ता में डूबने से पहले, अपने लक्ष्य की ओर एक छोटा सा तिल के बराबर भी आगे बढ़ना है। ठीक है। क्रिश्चनिटी में एक ईसाई मत के बड़े धर्मात्मा पुरुष थे। तो उनसे बात हो रही थी स्वामी जी महाराज की तो उन्होंने कहा कि महाराज जी, प्रार्थना के बारे में कुछ कहिए। तो महाराज जी ने कह कर सुनाआ उनको। हम लोगों के बीच में दुभाषिया बैठते थे हिन्दी का अंग्रेजी करने, अंग्रेजी का हिन्दी करने। तो कितना गलत-सलत करते थे सो तो कह नहीं सकते लेकिन कोशिश करके पूरी तरह सुनाया उनको। तो सुन लिया उन्होंने वे सज्जन अपने सम्बन्ध में कहने लगे, स्वामी जी महाराज हम लोग प्रात: काल सोकर जगते हैं, तो परमात्मा से प्रार्थना इसलिए नहीं करते हैं कि परमात्मा से कुछ माँगें। परमात्मा से प्रार्थना हम लोग इसलिए करते हैं कि जो कुछ उन्होंने दिया है, उसके लिए पहले उनको धन्यवाद दो।

बहुत अच्छी लगी बात मुझे, तो कहते हैं कि ईसाई मत के अनुसार आँखें खुलती है, तो हम प्रार्थना करके कहते हैं पिता से, ईसा मसीह ने बाप माना था, तो ईसाई लोग सब परमात्मा को बाप मानते हैं, तो कहते हैं कि प्रात: काल हम लोग उठकर पिता से कहते हैं, कि हे पिता आज आँखें मेरी खोली तो आपने मुझे सूर्य का प्रकाश देखने को दिया। तो आज का दिन मेरे लिए नया दिन हो। आज का दिन मेरे लिए नया जीवन का दिन हो। और हे प्यारे, जब तक तुम्हारा प्रेम न पाऊँ यह नया-नया दिन आता ही रहे। तुमने जो आज मुझको एक सवेरा देखने को दिया जिसमें कि मैं आगे बढ़ सकूँ इसके लिए तुमको बारम्बार धन्यवाद। यह बाइबिल में लिखा हुआ है। बातचीत हो रही थी, स्वामी जी महाराज ने सुनाया, उन्होंने सुनाया मुझे बहुत अच्छा लगा। उसने कहा कि हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं तो माँगते नहीं हैं अपनी कृपा से जितना उन्होंने दिया उसके लिए धन्यवाद देते हैं। तो बड़ा महत्त्वपूर्ण तत्व है अपनी परम्परा में पता नहीं कहाँ से यह भूल समा गई कि आदमी युवावस्था में सोचता है कि यह अवस्था तो मुझ को सुख भोगने के लिए मिली है और जब वृद्धावस्था आ जाएगी, जब किसी प्रकार भी सुख भोगने के लायक नहीं रहेंगे, तब पुरुषार्थ कर लेंगे परमार्थ का। तो सोचो तो सही सुख-भोग जैसी नीची से नीची स्थूल प्रवृत्ति के लायक तुम नहीं रहोगे तो परमार्थ जैसी उत्तम प्रवृति के लायक कैसे रहोगे? सोचो जिस युवावस्था में धन कमाने की सामर्थ्य है, समाज से सम्पर्क बनाने की सामर्थ्य है, अपने में शक्ति मालूम होती है, उस शक्ति काल में अगर असत् के संग पर विजय पाने का पुरुषार्थ नहीं करोगे, तो शक्तिहीनता में यह काम कैसे हो जाएगा? तो यह पुरुषार्थ जो है जीवन का, यह प्रारम्भिक काल से ही आरम्भ होना चाहिए। इस भ्रम में कभी मत रहना कि युवावस्था जो है वह सुख भोगने के लिए है, जो नहीं करना चाहिए सो करने के लिए है। और वृद्धावस्था आ जाएगी,

जब किसी काम के लायक नहीं रहेंगे तो परमात्मा को पकड़ लेंगे, तो यह नहीं होने का।

परमात्मा से मिलने का, नित्य योग से अभिन्न होने का, तत्व-बोध से अभिन्न होने का, परमात्मा के परम प्रेमी होने का पुरुषार्थ ऐसा नहीं है, कि अभी से आखिरी क्षण के लिए रख दिया जाए। तो आखिरी क्षण के लिए नहीं रखना है। इसके लिए तो प्रातः काल जैसे ही आँख खुले, कुल्ला कर लीजिए, आँख धो लीजिए और बैठ जाइए, जहाँ सो रहे थे वहीं पर। उसी बिस्तर में शान्त होकर के व्यक्तिगत सत्संग कीजिए। तो पहली बात क्या होगी? कि अपने लक्ष्य को याद कर लो। अब सवेरा हुआ है, प्रभु का दिया हुआ जीवन का नया दिन आज मुझको मिला है, तो आज मैं दिन भर इस प्रकार से चलूँ संसार में कि संध्या होने से पहले हमारे जीवन में परमार्थ के पथ में कुछ प्रगति हो, पहले यह याद कर लो। अब दूसरी बात क्या है? दूसरी बात यह कर लीजिए कि अब देखें कि जो नहीं करना चाहिए था, सो करना छोड़ दिया क्या? छोड़ दिया है, तो बहुत अच्छी बात है। परमात्मा से कृपा की भिक्षा माँग लीजिए हे प्यारे, आपके नाम पर आपकी प्रति होने के लिए मैंने ये व्रत लिया है कि जो नहीं करना चाहिए सो नहीं करुँगा। तो हे समर्थ, आप मेरी सहायता कीजिए असमर्थता के क्षणों में मेरा हाथ पकड़ कर उबारिए। ऐसा होता है, सोच विचार करके ठीक-ठीक काम करने के लिए आदमी चलता है और बीच रास्ते में कहीं प्रलोभन ने दबा लिया, कहीं भय ने दबा लिया तो पहले का किया हुआ निश्चय खास मौके पर बदल गया। आदमी थोड़ा खिसक जाता है, ऐसा भी होता है। तो ऐसे क्षणों के बचाव के लिए, यह भी मैंने क्रिश्चयनिटी की प्रार्थना से सीखा। हमारी लड़कियों ने Students ने सुनाया मुझे कि हम लोगों की प्रार्थना में एक पंक्ति यह भी होती है, कि हे प्रभु हे समर्थ, प्रलोभन की घड़ी में मुझको सँभालना। तो सवेरे का निश्चय क्या हुआ?

परमात्मा से उसी समय प्रार्थना कर लीजिए, अगर आप परमात्मा को मानते हैं तो और मैं इसी दृष्टि से बोलती हूँ, कि हम लोग जितने यहाँ बैठे हैं, प्रायः सभी परमात्मा को मानने वाले ही है। विरला ही कोई होगा जो न मानता हो। इसलिए उसकी चर्चा मैं छोड़ देती हूँ, तो प्रार्थना कर लीजिए। ऐसा दिखाई देता है कि यह बिल्कुल ठीक है। जो नहीं करना चाहिए सो करना मैंने छोड़ दिया, तो मेरा ऐसा अनुभव है, अन्य संतों-भक्तों और साधकों के जीवन को मैंने सुना है, देखा है, विवेचन किया है, उस अनुभव के आधार पर मैं आपको बताती हूँ कि जो नहीं करना चाहिए सो नहीं करूँगा, ऐसा निश्चय आपने किया तो हो सकता है कि निश्चय करते समय सत्य के प्रकाश में आपने अपनी दुर्बलताओं को नहीं देखा, उत्साहित होकर के निश्चय कर लिया, परन्तु उसके पालन करने की शक्ति उस समय आपके पास है नहीं, ऐसा हो सकता है।

फिर भी यह जीवन का मंगलमय विधान है कि दुर्बल व्यक्ति भी सत्य के भरोसे, परमात्मा के भरोसे, सत्-पथ का कोई व्रत ले लेता है, तो सत्य स्वयं ही उसकी रक्षा करता है, उसको शक्ति देता है और प्रलोभनों के क्षणों में उसके कदम को आगे बढ़ा देता है। ऐसा भी होता है। ठीक जिस समय लोभ आपको आक्रान्त करने वाला होगा, कदम पीछे हटने वाला होगा, अच्छा चलो आज ऐसे ही गलत-सलत कर लेते हैं, आज का काम तो हो गया कल फिर सोचेंगे, नहीं करेंगे। हे भाई दुर्बलताएँ हम लोगों में नहीं होती फिर तो हम लोग परमात्मा एक ही होते। उन्हीं छोटी, मोटी दुर्बलताओं के कारण ही सज्जन पुरुषों का, अच्छी निष्ठा वाली माताओं-बहनों का कदम जो है, वह साधना के पथ पर जगह-जगह पर अटक-अटक के रहता है।

तो मैंने ऐसा अनुभव किया है कि आपने सत्य के नाम पर, परमात्मा के नाम पर अगर व्रत ले लिया, तो अपने बल से नहीं, सत्य ही आपका

साथ देगा, परमात्मा ही आपका साथ देगा और कठिन घड़ियों में आपको पार करा देगा। इसमें दूसरा कार्य यह करो। उसके बाद ईश्वर-विश्वासी आप हैं तो थोड़ी देर के लिए अहम्-शून्य होने का साधन अपनाइए। तो अहम्-शून्य होना कैसे होता है? अनन्त परमात्मा की शरण में अपने को डालकर समर्पण-योग में रहिए। मुझे कुछ नहीं करना है, मेरा कुछ नहीं है, सब कुछ प्रभु का है।

प्रभु की कृपा-शक्ति की गोद में विश्राम लीजिए, तो भीतर में जो कुछ भी रहा होगा भूतकाल की भूलों के प्रभाव से, जो भी कुछ बना हुआ होगा, अगर आधे मिनट के लिए, एक मिनट के लिए, दो-तीन मिनट के लिए भी बिल्कुल शांत और निरीह बालक की तरह जगत्-जननी करुणामयी माँ की गोद में अपने को छोड़ सकेंगे, तो महाराज जी ने मुझको आश्वासन दिया कि थोड़े से थोड़े समय में कृपालु की कृपा-शक्ति जितनी सफाई तुम्हारी कर देगी उतनी तुम वर्षों के अभ्यास में नहीं कर पाओगे। यह एक रहस्य है जीवन का। तो जितनी देर शान्ति से रहा जाए, घड़ी मत देखिए, समय बाँधने की जरूरत नहीं है, करुणा सागर अपनी करुणा का विस्तार करके हमारे जैसे सभी प्राणियों का रक्षण-पोषण कर रहे हैं, सँभाल रहे हैं। हम क्षुद्र मनुष्य उतना अपराध कर ही नहीं पाएंगे, उतनी सामर्थ्य ही नहीं है, जितनी क्षमाशीलता उस क्षमा-सिंधु में है। उनकी करुणा की एक बूँद, हमारे जन्म जन्मांतर की भूलों को मिटाने के लिए पर्याप्त है।

●

प्रवचन 10

संघ के प्रर्वतक परम कारुणिक संत के हृदय में एक लगन थी कि संघ का वह प्रेमी साधक जो तत्काल जीवन-दानी नहीं हो सकता है, उसे भी इस दिशा में आगे बढ़ने का एक मार्ग मिलना चाहिए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मानव सेवा संघ में स्थाई साधक बनने का नियम है। स्थाई साधक उसे कहते हैं, जो संघ की विचार धारा द्वारा अपने साधन का निर्माण करता है। उसे यह आत्म-विश्वास हो जाता है कि मानव सेवा संघ की विचार धारा जीवनोपयोगी है। संस्था की दृष्टि से स्थाई साधक भी संघ का महत्त्वपूर्ण अंग है । आजीवन कार्यकर्त्ता होने के पहले स्थाई साधक होना अनिवार्य है ।

स्थाई साधक न हो और आजीवन कार्यकर्त्ता बनना चाहे और कहे कि हम खूब काम करेंगे, तो वह संघ के लिए ज्यादा मंगलकारी नहीं होगा और न उसका स्वयं का हित होगा। लेकिन यदि स्थाई साधक होकर काम करे तो मानव सेवा संघ का जो उद्देश्य है, अपना कल्याण और सुन्दर समाज का निर्माण, वह पूर्ण हो सकता है। स्थाई साधक हुए बिना संघ की सेवा का कार्य करने वाले का खुद का भी कल्याण नहीं होगा, तो उसकी सेवा से संस्था का विकास भी सम्भव नहीं है। स्थायी साधक की पहचान क्या है? स्थाई साधक उसे कहते हैं, जिसका मानव सेवा संघ की प्रणाली के अनुरूप पूरा जीवन साधन हो जाए। स्थाई साधक जो होता है वह सत्संग के द्वारा साधन का निर्माण करता है। किसी अभ्यास के द्वारा जो साधन का निर्माण करता है, वह मानव सेवा संघ का स्थाई साधक नहीं है। पूरा जीवन साधन कब होगा? जब हम इस सत्य को स्वीकार कर लें कि शरीर विश्व के काम आ जाए, अहम् अभिमान-शून्य हो जाए, और हृदय प्रेम से भर जाए। यह स्थाई साधक का लक्ष्य है और यह सत्संग से होता है, अभ्यास के द्वारा नहीं।

विश्वास और विचार के द्वारा होता है। विश्वास और विचार सत्संग का मूल आधार है। विश्वास क्या है? हमारा और भगवान का जातीय सम्बन्ध है और आत्मीय सम्बन्ध है, यह विश्वास है। विचार क्या है? शरीर और संसार का जातीय सम्बन्ध है। मन, वाणी, कर्म से बुराई-रहित होने से विकास होता है। उदार और स्वाधीन होने से विकास होता है। यह विचार-पथ हैं। विश्वास से भगवत्-प्रेम की प्राप्ति होती है और भगवत्-प्रेम विश्वास से सिद्ध है। विचार के आधार पर स्वाधीन होने का प्रश्न और विश्वास के आधार पर प्रेमी होने का प्रश्न स्थाई साधक होकर हल करना होगा।

कुछ दिन पहले मानव सेवा संघ के माध्यम से सम्पूर्ण जीवन को साधनमय बनाने की अभिलाषा रखने वाले भाई-बहनों ने स्थाई साधक होने का व्रत लिया था। उनका साधन और सत्संग का क्रम चल रहा है। गत वर्ष इस सम्बन्ध में न कोई बातचीत हो सकी न स्थायी साधकों का एक विशेष आयोजन प्रति वर्ष हुआ करता था, वह भी इधर नहीं हो सका। तो उन सभी स्थाई साधक जो यहाँ पर विद्यमान है, उनके लिए भी और जो आगे चलकर सम्पूर्ण जीवन को साधनमय बनाने के लिए मानव सेवा संघ के स्थाई साधक होना पसंद करेंगे, उनके लिए भी यह सूचना है। क्या करना होगा? कैसे करना होगा? किस प्रकार से आप अपने साधन के पथ पर आगे बढ़ सकते हैं, इसकी सब सूचनाएँ हैं।

संघ की नीति यह नहीं है, कि आप संघ की सेवा करते हैं तो बड़े अच्छे आदमी हैं और नहीं करते हैं तो अच्छे आदमी नहीं है। संघ की सेवा करते हुए, अधिकार-लोलुपता रखते हैं, यह साधक का लक्षण नहीं है। इसलिए परामर्श यह है कि संघ की सेवा कीजिए अथवा मत कीजिए पर स्थाई साधक होकर रहिए। जो अपने पर सबका अधिकार मानता है और अपना अधिकार किसी पर नहीं मानता है, वही स्थाई साधक हो सकता

है। जो इस सिद्धान्त को ठुकराता है अथवा पसंद नहीं करता है, यह स्थाई साधक नहीं है। वह सही अर्थ में साधक ही नहीं है। संघ का स्थाई साधक जो होता है, वह सेवा को प्रधानता देता है, पद को नहीं। सेवक में यदि पद-लोलुपता है, तो स्थाई साधक नहीं हो सकता है।

प्रश्न—मानव सेवा संघ का स्थाई साधक कौन कहलाएगा?

उत्तर—जिसको यह विश्वास है कि संघ की पद्धति से मेरा कल्याण होगा।

प्रश्न—स्थाई साधकों के लिए निश्चित व्रत नियमादि बनाना आवश्यक है?

उत्तर—व्रत नियमादि बनाना मानव सेवा संघ की पद्धति ही नहीं है। स्थाई साधक का सबसे बड़ा व्रत यह होता है कि वह सत्संग से साधन का निर्माण करे, अभ्यास का अनुसरण नहीं करे। किसी न किसी नाते सभी को अपना मानो और प्रेमी होने के लिए प्रभु को अपना मानो। जो अपने को स्थाई साधक मानेगा, जिसके हृदय पर संघ की छाप लगी है वह अपने आप ही अपना रहन-सहन बदलेगा। परन्तु संघ की यह पद्धति नहीं है कि साधक पर जोर डाला जाए, कि तुम अपने को अवश्य बदलो। स्थाई साधक के लिए संघ की पद्धति में स्थाई श्रद्धा होना अनिवार्य है। फिर वह आश्रम में आए अथवा न आए, संघ में सम्पत्ति लगाए अथवा न लगाए, उसको अपना कल्याण अभीष्ट होना जरूरी है।

जैसे संघ की सेवा के लिए आजीवन कार्यकर्त्ताओं का एक विभाग बनाया स्वामी जी महाराज ने कि ऐसे साधक ऐसे भाई-बहन जो आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करके, अपनी करके अपने पास कोई सम्पत्ति न रख करके अपने को संघ की सेवा में खाद बना देने को जो तैयार है, उसको आजीवन कार्यकर्त्ता बनाया गया। यह एक विभाग है।

ऐसे साधकों का सम्पूर्ण जीवन साधन में और संघ की सेवा में लग जाता है। फिर कुछ ऐसे घर-गृहस्थी वाले लोग भी थे, जिन्होंने कहा कि महाराज, हम लोगों को तो तैयारी के लिए थोड़ा समय चाहिए। इधर इस प्रकार की हम तैयारी कर सकें, तो उनको तैयारी के लिए समय जो दिया गया, उसमें यह बताया गया कि सब सम्पत्ति, सारा जीवन और सब कुछ संघ में लगाने के लिए तैयार न हो तो कम से कम अपने जीवन में से बुराइयों का त्याग करो। विचार के आधार पर अधिकार-लोलुपता और पद-लोलुपता का त्याग करो। जिनसे सम्बन्ध माना उनकी सेवा करो और प्रेमी होने के लिए प्रभु में विश्वास करो। और अपने यहाँ की जो यह पद्धति है कि ईश्वर-विश्वास, संसार से असंग होना और उदारता पूर्वक पर-पीड़ा से पीड़ित होकर सेवा करना ये व्रत जो हैं ये मनुष्य के स्वधर्म हैं, ये सत्य की स्वीकृति से ही पूरे होते हैं, इनके लिए अभ्यास अपेक्षित नहीं है।

तो जिन लोगों को अभ्यास वाले साधन में विश्वास है, वे संघ के स्थाई साधक नहीं हो सकते हैं। जिन लोगों को इस प्रणाली में विश्वास है, ये बात जम गई कि जीवन में परिवर्तन सत्संग से आता है। और सत्संग मनुष्य का पुरुषार्थ है। और सत्संग का परिणाम है कि जीवन में साधन की अभिव्यक्ति हो जाए। जैसे शान्ति की अभिव्यक्ति है, तो शान्ति की अभिव्यक्ति कैसे होगी भाई? 'मेरा कुछ नहीं है', 'मुझे कुछ नहीं चाहिए,' निर्मम और निष्काम होने का यह व्रत जो स्वीकार करेगा, उसके भीतर शान्ति आ जाएगी। निर्मम और निष्काम हुए बिना थोड़ी-थोड़ी देर के लिए एकांत में बैठकर हाथ-पाँव मोड़ लेने से, आँखें बन्द कर लेने से, साँस रोक लेने से, शान्ति की अभिव्यक्ति होती है, यह विश्वास मानव सेवा संघ का नहीं है। तो सदस्य होने की चर्चा प्रातः काल हो चुकी थी, अब स्थाई साधक होने की चर्चा हो रही है। इस पूरी चर्चा में आप देखेंगे कि उद्देश्य

केवल इतना है कि व्यक्ति स्वयं अपने विकास में अपने आप स्वाधीन होकर के आगे बढ़ सके, पराधीन न रहे।

बड़े दु:ख की बात है मेरे नजदीकी लोग अभी थोड़े दिन पहले आए थे। यहाँ मथुरा में एक यज्ञ होता है रामाश्रय सत्संग कहलाता है। वहाँ पर लोग आए थे, शरीर के सम्बन्ध से पुराना सम्बन्ध भी था उन लोगों के साथ उनकी चर्चा मैं सुन रही थी। पूछा मैंने कि आप लोग क्या करते हैं? वे लोग बता रहे थे। तो एक महिला, जिसको कि मैं बचपन से जानती हूँ, इस सत्संग में है। वह कहने लगी कि मेरी तो जिन्दगी खत्म हो गई थी तो हमारी गुरुमाता ने अपनी ओर से दस वर्ष मुझे दिए, अब देखो इन दस वर्षों में काम पूरा होता है कि नहीं होता है। मेरी हालत तो ऐसी हो गई है कि न हमको जीते बनता है न मरते बनता है, ऐसे वह कह रही थी। तो मैं नहीं कहती हूँ कि उस सत्संग का दोष है। सत्संग में क्या होता है? वह तो मुझे मालूम नहीं है लेकिन साधक की इस दशा को देख करके मुझे बड़ा दु:ख हुआ कि आदमी जिस बात में स्वाधीन है, उसमें भी अपने को कितना पराधीन बना कर बैठ गया। बहुत तकलीफ हुई। और फिर मुझसे पत्र-व्यवहार उनका होता रहता है। तो चिट्ठी लिखती हैं जो भी कुछ अपने मत के अनुसार लिखती हैं, उसके बारे में तो मैं कुछ नहीं कहती हूँ। मानव सेवा संघ की यह नीति नहीं है कि दूसरे साधक की दूसरी-दूसरी साधना की प्रणाली की साधनाओं में, उस विचारों में विकल्प खड़ा कर दो कि संदेह पैदा कर दो। यह अपने लोगों का काम ही नहीं है। भई तुम कहीं के भी साधक हो और किसी भी प्रकार की प्रणाली तुम्हारी हो, मैं तो हृदय से यही चाहूँगी कि भगवान तुम्हारी ही प्रणाली से तुमको पार लगा दें। तुम्हारा कल्याण हो जाए यह मुख्य बात है और मैं जैसे कहती हूँ वैसे करके हो जाए, दूसरे जैसे कहते हैं वैसे न हो, सो नहीं है ।

कहीं से भी सीख के आओ, कोई भी मत, विचार, सम्प्रदाय तुम्हारा हो, किसी भी प्रणाली का अनुसरण तुम करते हो, मेरे हृदय की सद्भावना यही है, कि तुम्हारा कल्याण तुम्हारी ही प्रणाली से हो जाए। प्रभु तुम्हारे पर कृपा कर दें, सहायता दे दें, तुम्हें पार लगा दें। आदमी शांति प्राप्त कर सके, आदमी पराधीनता से मुक्त हो सके, ईश्वर में विश्वास करने वाला अपने ही हृदय में प्रभु की उपस्थिति को अनुभव करके प्रेम में मस्त हो सके, इतना ही उद्देश्य है। उनको मैं उत्तर देती रहती हूँ, तो उत्तर दे देती हूँ, उनकी बातों का उल्लेख किए बिना संघ के सिद्धान्त के अनुसार यह जीवन का सत्य है, उसी के आधार पर मैं उत्तर दे देती हूँ। तो एक बार आई मेरे पास, चिट्ठियों का उल्लेख करते हुए कहने लगी कि देखो गुरुमाता ने हमारा इतना-इतना काम कर दिया और अब छोटी-छोटी शक्तियों ने ऐसा-ऐसा परमीशन दे दिया है, अब बड़ी शक्ति का परमीशन मिल जाएगा तो यह काम हो जाएगा।

हमारी कुछ समझ में नहीं आया। हम कहें कि तुम लोग कहाँ जाकर के, किस तरह दीनता में फँस गए भाई? सब कुछ करने वाला तुम्हारे भीतर बैठा है। तुम स्वयं अपनी जानी हुई भूल को मिटा सकती हो। तुम स्वयं ईश्वर को मान करके उनमें विश्वास करके उनके शरणागत हो सकती हो। अब बीच में कौन छोटी-छोटी शक्तियाँ हैं कौन बड़ी-बड़ी शक्तियाँ हैं ये क्या हैं? ये कुछ हमारी समझ में नहीं आईं। बहुत दुःख होता था मुझे। वह तो नजदीक की है उसे मैं खूब डाँटती भी हूँ, मना भी करती हूँ, बताती हूँ भई ऐसे-ऐसे मत करो, तो बड़ा अफसोस होता है। स्वामी जी महाराज ने कितना स्पष्ट कर दिया अपने लोगों का रास्ता और कितने खुले शब्दों में कह दिया कि भई तुम संस्था में सम्पत्ति लगाओगे तो अच्छे आदमी कहलाओगे, सेवा करोगे तो अच्छे आदमी कहलाओगे और नहीं करोगे तो अच्छे आदमी नहीं कहलाओगे, ऐसी कोई बात नहीं

है। अच्छा आदमी कौन है? जो अपने अधिकार का त्याग करता है, दूसरों के अधिकार की रक्षा करता है। अच्छा आदमी कौन है? जो पद लेकर के भी सेवा करता है, पद त्याग करके भी सेवा करता है। अच्छा आदमी कौन है? जिसने अपने चित्त को निर्विकार बना लिया। अच्छा आदमी कौन है? जिसने ईश्वर में विश्वास करके अपने को उनके समर्पित कर दिया। ठीक हैं न?

स्थायी साधक के लिए संघ की पद्धति में श्रद्धा का होना अनिवार्य है। आश्रम में आए अथवा न आए, संघ में सम्पत्ति लगाए अथवा न लगाए उसको अपना कल्याण अभीष्ट होना जरुरी है। संघ का स्थाई साधक होने की यह शर्त है अपना कल्याण आपको अभीष्ट होना चाहिए। इसी उद्देश्य से उसके रहन-सहन में स्वयं ही परिवर्तन आ जाएगा।

प्रश्न—स्थाई साधक को क्या करना चाहिए?

उत्तर—सेवा, सार्थक चिंतन, जितेन्द्रियता—यह सब करना चाहिए। स्थाई साधक में अपने कल्याण की बात मुख्य है। साधन निर्माण के साथ-साथ उसे सेवा करना है। स्थाई साधक का मतलब यह है कि वह इन्द्रिय-लोलुपता से जितेन्द्रियता की ओर और त्यागभावपूर्वक सेवा की ओर बढ़े। उसके भीतर यह पीड़ा होती रहे, हाय कैसे आगे बढ़ें? कैसे आगे बढ़ें? स्थाई साधक हुए बिना जो सेवा करता है वह भोगी है। स्वामी जी महाराज का वाक्य है। स्थाई साधक हुए बिना सेवा करने का क्या मतलब? जो अधिकार-लोलुपता से मुक्त नहीं हो सका, जो सेवा करने के लिए सभी को अपना नहीं मान सकता, जो वस्तुओं के प्रति अपनी ममता नहीं तोड़ सका, उसके द्वारा सेवा होती नहीं है।

जो सम्मान के लिए सेवा करता है, जिसको अपना कल्याण अभीष्ट नहीं है, वह स्थाई साधक नहीं है। स्थाई शब्द केवल इसलिए उसमें जोड़ा गया कि दो तरह के लोग समाज में पाए जाते हैं, कुछ लोग तो ऐसे हैं

कि जो इस चिरंतन विचार धारा को पसंद करके और अपने कल्याण की दिशा में आगे बढ़ते चले जाते हैं, उनके लिए मानव सेवा संघ में आना, मानव सेवा संघ ज्वाइन करना, विधि के अनुसार सदस्य बनना, स्थाई साधक होने का व्रत लेना, आजीवन कार्यकर्त्ता होना अनिवार्य नहीं है।

आप मनुष्य है। आपके भीतर शांति, स्वाधीनता और प्रेम की माँग है, तो उस माँग की पूर्ति के लिए मानव सेवा संघ जो सलाह देता है, उस सलाह को मान लिया और अपना कल्याण कर लिया। इस दृष्टि से आप भी हमारे लिए बड़े सहयोगी हो गए। कुछ लोग ऐसे हैं जिनके भीतर यह लालसा जगती है, कि ऐसा अच्छा स्वतन्त्र विचार कि जिसमें किसी प्रकार की पराधीनता नहीं है, गरीब हो तो क्या, अमीर हो तो क्या, और पढ़े लिखे हो तो क्या, और बिना पढ़े लिखे हो तो क्या? कुछ परवाह की बात नहीं है। शरीर रोगी हो तो भी, स्वस्थ हो तो भी, उच्च वर्ण में जनमें हों तो भी, निम्न वर्ण में जनमें हो तब भी मनुष्य यदि मनुष्य है तो उसकी बनावट ही ऐसी है कि वह शान्ति, स्वाधीनता, प्रेम की माँग अनुभव करेगा और जिसमें यह माँग पैदा हो जाएगी, उसकी उन्नति आरम्भ हो जाएगी। माँग पैदा होने से उन्नति आरम्भ हो जाती है, और माँग तीव्र होने से जीवन पूर्ण हो जाता है। तो इसमें स्वाधीनता है, पूरी स्वाधीनता है।

जब ये चर्चा हो रही थी तो किसी ने स्वामी जी महाराज से पूछा कि हम तो घर छोड़ कर अभी निकल नहीं सकते हैं और कमाई हुई सम्पत्ति की अभी हमारे परिवार को भी बहुत जरूरत है तो समाज की सेवा कर नहीं सकते हैं तो हम कैसे आगे बढ़ें? तो स्वामी जी महाराज ने कहा कि तुम धन कमाओ ईमानदारी से और मर्यादा पूर्वक काम भी करो और उदारता पूर्वक परिवार के साथ रहो भी लेकिन तुम्हारे भीतर लगन उठनी चाहिए। कौन-सी लगन? कि सोते, जगते, उठते, बैठते, काम धाम करते हुए भीतर एक लगन लगी रहे कि मैं कैसे साधना में आगे बढ़ूँ? मैं कैसे

आध्यात्मिक विकास में आगे बढ़ूँ ? मैं कैसे ईश्वर विश्वास में आगे बढ़ूँ ? तुम्हारे भीतर की यह जो लगन है, कि हम कैसे आगे बढ़ें कैसे आगे बढ़ें इस लगन में ही तुम्हारी उन्नति आरम्भ हो जाएगी। साहित्य में आपने पढ़ा होगा स्वामी जी महाराज ने जो साहित्य हम लोगों के सामने रखा है, उसमें आपने पढ़ा होगा कि मनुष्य के जीवन में माँग की जागृति से ही माँग की पूर्ति हो जाती है। इसी आधार पर कहा गया कि उसमें काल और स्थान का कोई भेद नहीं है। बाहरी परिस्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन सब बातों से कुछ मतलब नहीं है। और अब मैंने जीवन का विश्लेषण करके देखा है, तो मुझे ऐसा लगता है कि हम सभी भाई-बहनों को जो परिस्थिति मिली है, वही हमारे जीवन को पूर्णता तक पहुँचाने के लिए पर्याप्त है, जो मिला है सो। कितनी बड़ी बात है, सोच करके देखिए। मुझे एक बहन मिली थी, बरेली में सत्संग होता था, प्रतिवर्ष जाती थी मैं। अबकी मैं नहीं गई थी, समय नहीं था। कई वर्ष पहले की बात है तो मैं ऐसे ही बोल रही थी कि भई सत्य की अभिव्यक्ति का शरीर की दशाओं से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। तो सुना उन्होंने, जब में सत्संग से बाहर निकली तो उन्होंने मुझे पकड़ लिया और खूब गले से लिपट गई और रोने लगीं। मैंने कहा कि क्या बात है भाई ? आप क्यों रो रही हैं ? तो उस महिला ने कहा कि आप तो कह रही हैं कि भगवान तो रोगी को भी मिलते हैं, निरोगी को भी मिलते हैं तो क्या यह सच्ची बात है ?हमने कहा बात तो सच्ची है, सच्ची जान करके ही मैं कह रही हूँ। तो फिर उसके बाद उसने कहा कि कई वर्षों से मेरा शरीर अस्वस्थ है, सास और पति सेवा करते रहते हैं और मैं बहुत दुःखी रहती हूँ कि मेरी जिन्दगी बेकार हो गई, सास की सेवा मुझे करनी चाहिए, पति की सेवा मुझे करनी चाहिए। ये दोनों हमारे शरीर की देखभाल में लगे रहते हैं, तो मुझे तो जिन्दगी भार मालूम होती है। ऐसा लगता है कि जल्दी से जल्दी यह शरीर खत्म हो

जाए तो अच्छा है। तो कई वर्ष इस दशा में बीत गए। पता नहीं आज मुझे क्या हो गया सवेरे से ही मेरे दिल में एक बात लगी और मैंने इन माँ, बेटे दोनों से कहा कि आज मुझे आश्रम में ले चलो, सत्संग हो रहा है, आज मैं सुनने जाऊँगी। ले आए तो कहे कि आप तो ऐसे कह रहे हैं। हमने कहा कि हाँ भई ठीक है, अनुभवी संत के मुख से मैंने सुना है और मैं विश्वास करती हूँ कि यह सत्य है, इसलिए मैं कह रही हूँ। तो कहने लगी कि बहुत अच्छी बात है। अब तो मैं मरने को नहीं सोचूँगी, अब तो मैं सोचूँगी कि भगवान अगर बीमार को भी मिल सकते हैं, तो बहुत अच्छी बात है, तो हम घर का काम नहीं कर सकते, सास और पति की सेवा नहीं कर सकते हैं लेकिन भगवान को तो पा सकते है? मैंने कहा हाँ पा सकते हैं। तो बातचीत करके वह चली गई। मैं भी भूल गई, उसके बाद क्या ध्यान रहे। फिर कई वर्षों के बाद वह महिला मिली मुझे खुब हृष्ट-पुष्ट तन्दुरस्त शरीर और आकर के फिर हमसे लिपटी और कहने लगी कि माता जी पहचाना मुझे आपने। हमने कहा कि मुझे याद तो नहीं है। उसने अपनी सब कथा सुनाई और कहा कि देखिए मुझे तो बहुत आराम मिल गया, बहुत आराम मिल गया, तो शरीर भी अच्छा हो गया और सास और पति की सेवा न करने का दुःख भी मिट गया और ईश्वर-विश्वास भी मिल गया।

वे तो आनन्दित हो गईं। तो यह तो एक स्वाधीन पथ है कि कोई इस दिशा में पराधीन नहीं है। एक विशेष सम्प्रदाय की महिला स्वामी जी महाराज के सत्संग में आ करके बहुत आनन्दित हो गई, अब तो उनका सारा परिवार ही मानव सेवा संघ में है। वे कहती थीं कि मैंने अपने यहाँ किसी सम्प्रदाय में यह सुना था कि स्त्री शरीर में आदमी की मुक्ति नहीं होती है। बहुत दुःख की बात। अब शरीर तो भगवान ने दिया है सो दिया है क्या करें उसका? तो मैं ऐसे एक-दो उदाहरण अपने लोगों के सामने

रख रही हूँ कि मानव सेवा संघ में इस प्रकार की पराधीनता मनुष्य के सामने नहीं रहने दी कि स्त्री शरीर होने के कारण से तुम मुक्ति से निराश हो जाओ कि बीमार होने के कारण से तुम ईश्वर-भक्ति से निराश हो जाओ। ऐसा नहीं है कि पढ़ा लिखा नहीं है तो ज्ञान से निराश हो जाए, ऐसा नहीं है। शरीर की और बाहर की परिस्थितियों से सत्य की अभिव्यक्ति में कोई भेद नहीं पड़ता है, इस बात को हम सब भाई-बहन जान लें और अपने कल्याण के लिए सदैव तत्पर रहें। तो मैंने महाराज जी के मुख से ऐसा सुना है और बात बिल्कुल पक्की लगती है मुझे, कि प्रभु की कृपालुता और संत की सद्भावना सदैव सभी साधकों के साथ रहती है। और सचमुच जो अपनी दशा से असंतुष्ट होकर अविनाशी जीवन की आशा लेकर आगे बढ़ता है, जीवन का मंगलमय विधान इतना सुन्दर है कि उसके जीवन में पूर्णता अवश्य आती है।

अपना कल्याण अभीष्ट हो, सत्संग की महिमा में निष्ठा हो और सत्संग के द्वारा साधन का निर्माण करना चाहे और यथा सम्भव यथा शक्ति जहाँ पर है, वहीं पर सुख की दासता और स्वार्थ को छोड़ करके सेवा पसंद करें तो आप मानव सेवा संघ के स्थाई साधक हो सकते हैं और आगे बढ़ सकते हैं। जैसे-जैसे आपके जीवन में शान्ति की अभिव्यक्ति होने लगेगी, शरीर और संसार की दासता कट जाएगी, तो आप का यह कल्याणमय जीवन ही मानव सेवा संघ का जीता जागता चित्र बन जाएगा और उसके प्रभाव से समाज में बहुत अच्छे भावों और विचारों का प्रसार होगा।

●

सन्त हृदय की करुण पुकार

हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे समर्थ हे करुणासागर विनती यह स्वीकार करो,
हे समर्थ हे करुणासागर विनती यह स्वीकार करो,
भूल दिखाकर उसे मिटाकर अपना प्रेम प्रदान करो ।
भूल दिखाकर उसे मिटाकर अपना प्रेम प्रदान करो ।
पीर हरो हरि पीर हरो हरि पीर हरो प्रभु पीर हरो ।
पीर हरो हरि पीर हरो हरि पीर हरो प्रभु पीर हरो ।